# सिद्धयोग

संस्थापक संरक्षक एवं
संपादक
योग योगेश्वर अनन्तश्री
चन्द्रमोहनजी महाराज

वर्ष १५
अंक ५
अगस्त [illegible]

श्री सिद्ध गुफा
प्रकाशन
सेवाई आगरा

इस अंक में—

प्रकाशक
श्री सिद्धगुफा, सवाई


- विद्वान न विभाय १
- योग के भेद, उपभेद और उनकी साधना
  योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज २
- भव-प्रत्यय योगी सन्त निमाई
  श्री नित्यानन्द जी ११
- योगेश्वर चरित्र माला
  आनन्दकन्द योगयोगेश्वर श्री सद्गुरुदेव द्वारा १३
- सदाशिव और जीव
  श्री शिवनाथ मेहरोत्रा १७
- योग तथा उसके अङ्ग का निरूपण
  श्री मानिकचन्द उमर वैश्य १९
- माया, महामाया तथा योगमाया
  श्री पारसनाथ जी २४
- नाथ सिद्धों की वाणियां
  श्री कृष्णकुमार पाण्डेय २८
- भूल गया मैं तो······ (कविता)
  श्री श्यामबिहारी 'श्याम' ३२
- साधकों के प्रश्न तथा उनके उत्तर
  श्री सद्गुरुदेव जी द्वारा ३३
- विचार-शून्यता
  श्री बी० बी० गुप्त ३९
- ईश्वर प्रणिधान व उसका फल
  डा० श्रीमती राज मिश्रा ४१
- पत्रम्-पुष्पम्-फलम्-तोयम् ४६
- हमें दे डालो यह वरदान ! (कविता)
  श्री रामनारायण जी त्रिपाठी ४८


—•—


संयुक्त सम्पादक
'दिव्य'

वार्षिक मूल्य १८ रुपया

# सिद्ध योग

वर्ष १५
अङ्क ५

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः ।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुविशदं योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोगः' ॥

अगस्त
१९८२

## विद्वान् न विभाय

—❀❀❀❀—

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू
रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः ।
तमेव विद्वान् न विभाय
मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम् ॥

( अथर्व० १०/८/४४ )

अर्थात्

जो सर्वथा कामना-रहित, धीर कभी न मरने वाला स्वयं अपने आधार से सदा विद्यमान, आनन्द रस से परितृप्त तथा किसी प्रकार की कोई भी न्यूनता न रखने वाला है। उस धीर, अजर, सदा तरुण को आत्म-स्वरूप जानकर ही मनुष्य मृत्यु से नहीं डरता, यानी मृत्यु से निडर हो जाता है। —वेद भगवान

हमारा विशेष लेख—

# 卐 योग के भेद, उपभेद और उनकी साधना

❀ योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

'योग' शब्द इतना व्यापक एवं महत्वशाली है कि सभी सिद्धान्तवादियों ने इसे अपने हृदय से अपनाया है। भक्ति-योग, ज्ञान-योग, कर्म-योग, राज-योग, लय-योग, हठयोग, शून्य-योग इत्यादि यह सभी शब्द इसकी व्यापकता के परिचायक हैं। इस संसार में जन्म लेने वाला कोई भी प्राणी ऐसा नहीं होगा, जिसको योग की सच्ची जिज्ञासा न हो, किन्तु "मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना" की युक्ति के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति ने इसका अपनी मति के अनुसार अर्थ किया है। जो लोग हृदय प्रधान हैं और ईश्वर की अर्चना-वन्दना आदि के रूप में लक्ष्य प्राप्ति में संलग्न हैं, उन्होंने इसको 'भक्ति-योग' से जो लोग ज्ञान-निष्ठा प्रधान हैं और महावाक्यों का मनन करते हुए भी वेदान्त सिद्धान्तों के अनुसार आत्म-साक्षात्कार के लिए प्रयत्नशील हैं, उन्होंने ज्ञान-योग के रूप में और जो लोग ईश्वरार्पित बुद्धि से निष्काम भाव से कर्म करते हुए कर्म-बन्धन से छूटकर अपने लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते हैं, उन्होंने इसे कर्म-योग के नाम से अपनाया है। इसके अतिरिक्त योग के व्यापक प्रभाव और महत्ता को देखकर कुछ दम्भी लोगों ने इस शब्द को अपनाकर यक्षिणी पिशाचिनी आदि छोटी-छोटी तामस-राजस शक्तियों की आराधना कर सिद्धियों को पाकर संसार के भोले-भाले प्राणियों को चमत्कार के जाल में डालकर अपनी पूजा कराई और अपने को योगी सिद्ध किया है। इसके अतिरिक्त जिन्होंने योगके कुछ साधनों को कहीं से सीख लिया, उन्होंने योगाश्रम स्थापित कर लिये और केवलमात्र नेति-धौति आदि षटकर्म व आसन बन्ध-मुद्राओं के द्वारा शारीरिक साधनायें ही अपना परमलक्ष्य बना लिया है। इसी प्रकार से बिना अष्टांग-योग की साधना के ही किन्हीं लोगों ने भू-गर्भ, जल-गर्भ आदि समाधियां लगाकर योग के व्यापक शब्द से लाभ उठाया। यह सब योग का वास्तविक अर्थ न समझ पाने या समझकर भी उसकी उपेक्षा करने के कारण है।

वस्तुतः ठीक प्रकार से विचार कर देखा जाये तो 'योग' शब्द का अर्थ है मिलाने वाली क्रिया। पाणिनीय व्याकरण के अनुसार युज् धातु से संधानार्थ भाव अर्थ में घञ् प्रत्यय होकर योग शब्द सिद्ध होता है, जिसका अर्थ

है जुड़ना-मिलना। युज् समाधौ से 'योग' का अर्थ है समाधि।

योगाचार्य भगवान पतंजलिदेव जी ने 'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः' कह कर योग शब्द-को अभिव्यक्त किया। जिसका अर्थ है चित्तवृत्तियों का निरुद्ध होना। "चित्तवृत्ति नाम नितरां निरोधः" अर्थात् चित्तवृत्तियों का नितान्त रुक जाना ही निरोध शब्द का अर्थ है और हमारी शास्त्रीय परिभाषा में निरोधः समाधि "समाधिर्वै योगः" अर्थात् समाधि का नाम ही योग है और निरोध को ही समाधि कहते है और समाधि शब्द का अर्थ है "समाधिः समतावस्था जीवात्मा परमात्मनोः" कहकर हमारे आचार्यों ने जीव और परमात्मा की समस्थिति ही योग समाधि बतलाया है अर्थात् जिस क्रिया को करके जीवात्मा अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाये, उसी क्रिया को समाधि कहा गया है। भगवान पतंजलिदेव जी ने यहां पर "योगश्चित्तवृत्ति निरोधः" कहकर योग का लक्षण किया, वहां उसके साथ ही "तदा-द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानाम्" कह करके जीवात्मा का समाधि स्थिति में स्वरूपावस्थित होना स्पष्ट बतला दिया है। इस सूत्र पर भाष्य लिखते हुए श्री व्यासदेव जी ने बिल्कुल स्पष्ट किया है कि "स्वरूप प्रतिष्ठा तदानीं चिति-शक्तिर्यथा कैवल्ये" अर्थात् चितिशक्ति जैसी कैवल्य में होती है वही स्वरूप प्रतिष्ठा का सही अर्थ है। जीवात्मा समाधि में भी कैवल्य की तरह ही स्वरूप प्रतिष्ठ होता है। किन्तु "योगश्चित्तवृत्ति निरोधः" इस सूत्र में केवल मात्र चित्तवृत्ति निरोध को योग कहा है न कि सर्व चित्तवृत्ति निरोध को योग कहा है क्योंकि इस सूत्र में सर्व शब्द का ग्रहण नहीं है। इसलिए योग की संप्रज्ञात व असंप्रज्ञात दोनों ही अवस्थाओं का नाम योग है। इसी कारण से 'वितर्क विचारानन्दास्मितानुगत संप्रज्ञातः' कह करके संप्रज्ञात योग व "विराम प्रत्यया-भ्यास पूर्व संस्कारशेषोऽन्यः" कह करके असंप्रज्ञात योग का कथन किया है।

संप्रज्ञात व असंप्रज्ञात समाधि को दूसरे शब्दों में एकाग्रावस्था व निरोधावस्था कहना चाहिए। सारे संसार के प्राणियों के चित्त ५ अवस्थाओं में विभक्त रहा करते हैं। उनमें से—

### १. मूढ़ावस्था के प्राणी—

जिनमें तमोगुण प्रधान रहता है तथा रज और सत्वगुण गौण हो जाया करते हैं। इस अवस्था के चित्त वालों की प्रवृत्ति काम, क्रोध, मोह आदि से आवृत्त रहा करती है और वे आलस्य तन्द्रा से घिरे रहते हैं। किसी भी प्रकार उनकी उदर की पूर्ति होती रहे, इसके अतिरिक्त किसी के हिताहित लोक परलोक से इनका कोई सम्बन्ध नहीं होता।

### २. क्षिप्तावस्था के प्राणी—

जिनमें रजोगुण प्रधान रहता है। तमोगुण

व सत्वगुण गौण रहने के कारण इनके मन में चञ्चलता, दुःख, शोक, चिन्तायें बनी रहती हैं। लौकिक साधना ही इनका परम लक्ष्य रहता है। सांसारिक कार्य, धन्धे, व्यापार के अतिरिक्त परलोक आदि में इनकी आस्था नहीं होती।

इन लोगों का प्रायः सिद्धांत रहा करता है-

**यावज्जीवेत् सुखंजीवेत्,**
**ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।**
**भस्मीभूतस्य देहस्य,**
**पुनरागमनम् कुतः॥**

अर्थात् मनुष्य संसार में जब तक जीवित रहें उसे सुखपूर्वक जीना चाहिए। ऋण लेकर भी ऐश-आराम करना चाहिए। मृत्यु के बाद शरीर जलकर भस्म हो जायेगा। भस्मी-भूत हुआ वह शरीर फिर नहीं मिलेगा। लोक व परलोक की बातें थोथी हैं। स्वर्ग व अपवर्ग किसने देखा है। इसलिए जो कुछ भी स्वर्ग-अपवर्ग है इसी लोक में है। इस प्रकार का सिद्धान्त रजोगुण प्रधान व्यक्तियों का हुआ करता है। इसके अतिरिक्त तीसरी अवस्था के प्राणी होते हैं।

### ३. विक्षिप्तावस्था के प्राणी—

जिनमें सत्वगुण प्रधान रहता है, रजोगुण व तमोगुण गौण हो जाया करते हैं। इनके मन में पूर्ण प्रसन्नता, क्षमा, दया, परोपकार की भावना और साधनों में संलग्नता व ज्ञान, धर्म, वैराग्य में पूरी-पूरी अभिरुचि रहती है। इनका मन थोड़ा-थोड़ा एकाग्रता की ओर चलने लगता है तथा शान्त रहता है। ये लोग स्वाध्याय, संकीर्तन, उपासनायें इत्यादि करते हैं, किन्तु एकाग्रता के बिना इस भूमिका के प्राणी योग श्रेणी के नहीं माने जाते हैं क्योंकि इनमें समाधि गौण रहती है, विक्षेप प्रधान रहता है। भगवान वेदव्यासजी ने इस स्थिति में रहने वाले व्यक्तियों के लिए स्पष्ट लिखा है—

**तत्र विक्षिप्ते चेतसि विक्षेपोपसर्जनीतः समाधिनं योग पक्षे वर्तते।**

अर्थात् विक्षेपोपसर्जनी भूत समाधि योग पक्ष में नहीं मानी जाती। ये लोग जप, तप, आदि में प्रयत्नशील रहते हैं और ईश्वरानुग्रह की प्रतीक्षा में अपने मन को आश्वासित रखा करते हैं। जब कभी इनके मन में तरंग उठती हैं तो यह कह उठते हैं—

राम नाम रटते रहो,
जब लगि घट में प्रान।
कबहूँ दीनदयाल के,
भनक पड़ेगी कान॥

इन तीन स्थितियों में रहने वाले व्यक्ति 'योगी' शब्द से अभिवाच्य नहीं कहे जाते। योग की वर्णमाला मन की एकाग्रता से आरंभ होती है।

### ४. एकाग्रतावस्था के प्राणी —

जिनमें सत्वगुण प्रधान रहता है व रजोगुण व तमोगुण मात्र में शेष रहते हैं। इनका मन दृष्टानुश्रविक विषय वितृष्ण स्ववशीकार संज्ञा-वैराग्यम् हो करके अपर वैराग्य को प्राप्त होता है। मनुष्य का मन बहुत ही अद्‌भुत शक्तिशाली है, वस्तुतः विचार कर देखा जाये तो प्रभु की सृष्टि के बड़े-बड़े अद्‌भुत कार्य मन की एकाग्रता से ही सम्पन्न होते हैं। जब तक मन के अन्दर एकाग्रतावस्था का उदय नहीं होता, तब तक हम किसी भी मन्त्र का उच्चारण करते रहें, वह केवल वर्ण-विन्यास मात्र है। र म क च ट ये सब शब्द हैं। शब्द की उत्पत्ति आकाश से होती है और आकाश में ही उसका विलय हो जाया करता है। राम-नाम का उच्चारण करके तब तक हम कुछ भी लाभ नहीं उठा सकते जब तक श्रीराम के रूप में हमारा मन एकाग्र न हो जाये। इसीलिये भगवान पतञ्जलिदेव जी ने ईश्वर के मुख्य नाम 'ॐ' का वर्णन करते हुए "तज्जपस्तदर्थ भावनम्" अर्थात् उसके नाम का जाप करना और अर्थ का ध्यान करना। ये दोनों क्रियाएँ साथ होने पर ही मनुष्य नाम जप आदि के शुद्ध परिणाम को पा सकता है। क्योंकि मन बहुत चंचल है, मनकी चंचलता को जगदात्मा अखिल लोकनायक भगवान श्रीकृष्णचन्द्र जी ने स्वयं स्वीकार किया है—

असंशयं महाबाहो,
मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय,
वैराग्येण च गृह्यते॥

अर्थात् हे अर्जुन अवश्य ही मन बहुत चंचल है और वह अभ्यास व वैराग्य के द्वारा नियन्त्रण में लाया जा सकता है। मन की शक्ति को जब तक हम नहीं जान सकते जब तक वह एकाग्र नहीं होजाता। हमारे आचार्यों ने मन को ज्योतियों की भी परम ज्योति माना है। किन्तु उसकी शक्ति को एकाग्र होने के बाद ही हम जान सकते हैं। जिस प्रकार से तीव्र गति से चलने वाले बिजली के पंखे को हम केवल एक गोल चक्र ही देखते है, और जब वह रुक जाता है तो उसकी तीनों पंखड़ियां अलग-अलग दिखलाई देने लग जाती हैं। इसी प्रकार मन को एकाग्र करके ही उसके अन्दर छिपे हुए रहस्यों को हम जान सकते हैं अतः मन की एकाग्रतावस्था को हमारे योगाचार्यों ने समाधि पक्ष में माना है और इसी को संप्रज्ञात योग कहा गया है। संप्रज्ञात योग के विषय में भगवान् व्यासदेव ने अपने भाष्य में ये शब्द लिखे हैं—

यस्त्वेकाग्रे चेतसि सद्‌भूतमर्थं प्रद्योतयति क्षिणोति च क्लेशान् कर्म बंधनानि श्लथयति। निरोधमभिमुखं करोति, स संप्रज्ञातो योग इत्याख्यायते।

अर्थात् जो एकाग्रचित में अद्भुत अर्थ को प्रकट करता है और क्लेशों को क्षीण करता है और कर्म बन्धनों को ढीला करता है, तथा चित्त को निरोधाभिमुख करता है, उसको संप्रज्ञात योग कहते हैं। इसलिए संप्रज्ञात योग में क्योंकि मन की एकाग्रता होती है और विभिन्न प्रकार की अनुभूतियां हुआ करती हैं तथा मन की शक्तियां प्रकट होती रहती हैं, इसीलिए इसको संप्रज्ञात योग कहा है। इससे आगे पांचवीं स्थिति के प्राणी निरोधावस्था के प्राणी कहलाते हैं।

## ५. निरोधावस्था के प्राणी—

जिनमें बाहर से गुणों का परिणाम बन्द होकर चित्त सत्व में निरोध परिणाम संस्कार मात्र से शेष रह जाता है, वे द्रष्टा अपने में स्थित हो जाते हैं। ऊपर वर्णन की गयी पांचों प्रकार की अवस्थाओं में केवल मात्र एकाग्रतावस्था व निरोधावस्था को ही योग श्रेणी में लिया है। संसार का कोई भी प्राणी किसी प्रकार की साधनाएं करता रहे जब तक मन में एकाग्रता का उदय न हो तब तक उसका योग में प्रवेश नहीं माना जा सकता। भगवान् पतञ्जलिजी ने

**यमनियमास न प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधयोऽष्टवङ्गानि।**

कह करके योग का वर्णन किया है। अङ्ग-अङ्गी से अलग नहीं होते। इस विचार से अष्टांगयोग के किसी भी एक अङ्ग का पालन करने वाला भी योग का विद्यार्थी तो है ही।

इनमें से यम, नियम, आसन, प्राणायाम व प्रत्याहार ये पांच अङ्ग धारणा, ध्यान व समाधि की अपेक्षा बहिरंग हैं व धारणा, ध्यान, सम्प्रज्ञात समाधि, असम्प्रज्ञात की अपेक्षा बहिरंग हैं। भगवान पतंजलिदेव जी के शब्दों में किसी एक पर चित्त को बांधना धारणा कहलाती है। 'देशबंधश्चित्तस्य धारणा' से ही सम्प्रज्ञात योग का श्रीगणेश होता है। धारणा सिद्ध हो जाने पर मन के अन्दर योग में प्रवेश की योग्यता हो जाती है। धारणा की सिद्धि से प्राप्त हुई योग्यता वाले मन की वृत्ति अन्तर्मुखी होती है। सम्प्रज्ञात योग का अभ्यासी योगी अपने प्रथम अभ्यास में वितर्कानुगत योग का अभ्यास करता है, उसमें वह आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी इन पांच महाभूतों का व शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इनके गुणों का प्रत्यक्ष करता है। इस वितर्कानुगत योग में पञ्च-भूत व पञ्च-भूतों से होने वाले सब विस्तार का और इनके सब विषयों को पूर्ण प्रत्यक्ष करता है। साधक अपने अभ्यास में पृथ्वी तत्त्व में पहाड़, सुरम्य, वन, उपवन में नाना प्रकार की दिव्य सुगन्धों का अनुभव करता है और जल तत्त्व में नाना प्रकार के समुद्र और रसों का अनुभव करता

है। अग्नि तत्त्व में अनेक विधि ज्वालाओं और महान् दिव्य रूपों का अनुभव करता है। वायु तत्त्व में दिव्य स्पर्शों का अनुभव करता है व आकाश तत्त्व में शून्य आकाश व आकाश से उत्पन्न होने वाले नाना प्रकार के शब्दों को सुनता है। इस वितर्कानुगत योग के सवितर्क और निर्वितर्क ये दो अलग भेद हैं। उसमें सवितर्क समाधि—

**तत्र शब्दार्थ ज्ञान विकल्पैः 'संकीर्णा सवितर्का' समापत्तिः।**

अर्थात् वितर्कानुगत में जिस समाधि में शब्द, अर्थ और उसका ज्ञान मिला हुआ सा होने पर बराबर अलग-अलग भाषित होते रहें वह सवितर्क समाधि कहलाती है एवं उसका अभ्यास करते-करते चित्त ध्येयाकार हो जाये व शब्द, अर्थ, ज्ञान न रहे तब वह निर्वितर्क समाधि कहलाती है। इस विषय को इस प्रकार समझ लेना चाहिए, जैसे साधक के ध्यान में एक गाय है। गाय एक शब्द है और लम्बे गले वाली, दो सींगों वाली, सफेद रंग, चार पैरों वाली गाय एक पशु है। यह ज्ञान होना चाहिए कि वह एक गाय है, यही ज्ञान है। ये तीनों शब्द, अर्थ और ज्ञान एक विषयक होते हुए भी अलग-अलग समझ में आते हैं। ऐसी स्थिति का नाम सवितर्क समाधि है। जिसमें साधक का मन ध्येयाकार बन जाये व शब्द, अर्थ, ज्ञान अलग-अलग अनुभव न आकर अर्थमात्र भाषित होता रहे वह निर्वितर्क समाधि है।

**स्मृति परिशुद्धौ स्वरूप शून्येवार्थमात्र निर्भासा निर्वितर्का।**

विचारानुगत योग निर्वितर्क समाधि की पराकाष्ठा में पहुँच जाने के बाद मनुष्य का मन सूक्ष्म विषयों में प्रवेश करता है। अभी तक वितर्कानुगत योग में उसने स्थूल महाभूतों का और उनके विषयों का प्रत्यक्ष किया था। किन्तु अब विचारानुगत योग में महाभूतों की अपेक्षा उनके सूक्ष्म तन्मात्र का प्रत्यक्ष करता है। जैसे वितर्कानुगत समाधि में स्थूल महाभूत आकाश व उसके गुण शब्द का अनुभव किया था, उस विचारानुगत में सूक्ष्म आकाश या शब्द तन्मात्र का अनुभव करेगा व इसी प्रकार वायु में सूक्ष्म वायु तत्व का या स्पर्श तत्व का तन्मात्र, अग्नि में सूक्ष्म अग्नि तत्व या रूप तन्मात्र का, जल में सूक्ष्म जल तत्व या रस तन्मात्र का, पृथ्वी में सूक्ष्म पृथ्वी या गन्ध तन्मात्र का अनुभव करेगा। इसके साथ दस इन्द्रियों का मन, बुद्धि, अहंकार का प्रत्यक्ष करेगा। इसी प्रकार इन सूक्ष्म विषयों में होने वाली समाधि का नाम सविचार समाधि है। जिस प्रकार वितर्कानुगत समाधि के सवितर्क और निर्वितर्क के दो भेद हैं।

इसी प्रकार विचारानुगत समाधि में

१—सविचार, २—निर्विचार दो भेद हैं सूक्ष्म विषय की सीमा प्रधान अलिंग तक है।

**सूक्ष्म विषयत्वं चालिङ्ग पर्यवसानम्**

जैसे हमने किसी भी तन्मात्रा का सूक्ष्म ध्यान आरम्भ किया, उसका अनुभव देश, काल व निमित्त से सीमित अनुभव होता रहे व ध्याता, ध्यान, ध्येय तीनों अलग-अलग भासित होते रहें तब इसका नाम सविचार समाधि है एवं जिस समाधि में ध्येय 'विषय' देश, काल व निमित्त से सीमित न दिखलाई दें, तो वह निर्विचार समाधि कहलायेगी। इस विचारानुगत योग में मनुष्य प्रकृति के सूक्ष्म से सूक्ष्म अवयवों का पूर्ण प्रत्यक्ष कर लेता है और सूक्ष्मताकी परिधिको पहुँच जाता है। क्योंकि योगी इसमें सूक्ष्म मन का, सूक्ष्म इन्द्रियों का, सूक्ष्म बुद्धि का एवं अहंकार का पूर्ण प्रत्यक्ष कर लेता है। इसलिये इसमें दैविक शक्तियों का विकास हो जाता है। इस स्थिति के योगी को दूर-दर्शन, दूर-श्रवण, दूर-स्पर्शन आदि ज्ञात होने लगता है। इसके साथ-साथ सूक्ष्म देव लोकादि भी अनुभव में आने लगते हैं और उन सब मायिक स्थानीय देवताओं को देखकर भी योगी अपने आपको इन सबसे उत्कृष्ट देखता है व बुद्धि के आमोद-प्रमोद आह्लादि सूक्ष्म विषयों को प्रत्यक्ष करता है और अपने आपको पूर्ण आनन्दमय देखता है। ऐसी स्थिति में देव लोग अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करते हैं। उस समय योगी को बहुत सचेत होकर रहने की आवश्यकता है। भगवान पतंजलिदेव जी की आज्ञा है कि—

**स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्गस्मयाकरणं पुनरनिष्ट प्रसङ्गात्।**

यह चारों प्रकार की समाधियां सबीज कहलाती हैं। यहां तक कि संसार का बीज बना रहता है। मनुष्य संसार से परे नहीं हो पाता, इसलिये स्थूलार्थ में सवितर्क और निर्वितर्क एवं सूक्ष्मार्थ सविचार, निर्विचार समाधियां सबीज हैं। किन्तु निर्विचार समाधि ज्यों-ज्यों बढ़ती है, त्यों-त्यों उसकी स्थिति निर्मल बनती चली जाती है। पुरुष प्रकृति-पर्यन्त सब सूक्ष्म स्थूल पदार्थ शीशे की तरह चमकते हुए दिखाई देने लगते हैं—

**निर्विचार वैशारद्येऽध्यात्म प्रसादः**

निर्विचार समाधि की निर्मलता में योगी का स्फुटप्रज्ञा लोक होता है।

**प्रज्ञाप्रासादमारूह्य,**
**अशोच्यः शोचतो जनान्।**
**भूमिष्ठानिव शैलस्थः,**
**सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति॥**

ऐसी स्थिति में योगी सब चिन्ताओं से रहित होकर सांसारिक प्रवाह में बहते हुए

प्राणियों को इस प्रकार देखता है, जिस प्रकार पहाड़ पर खड़ा होकर मनुष्य जमीन वालों को देखा करता है। इस स्थिति में समाधिस्थ योगी को ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त होती है। उस समय योगी जो कुछ भी देखता है सत्य देखता है। इस बुद्धि का विषय श्रुत और अनुमान से बहुत आगे का होता है। इसके संस्कार अन्य संस्कारों को रोक देते हैं। ऐसी स्थिति में बुद्धि के आमोद-प्रमोद विषयों में ज्योंही योगी संयम करता है, त्योंही अपने आपको आनन्द-मय देखने लगता है। यही है सम्प्रज्ञात समाधि की तीसरी स्थिति आनन्दानुगत समाधि की गति। इसी प्रकार पुरुष की दृक्-शक्ति और बुद्धि की दर्शन-शक्ति जब तक एक रूप में भासित है और उसमें योगी संयम करता है, तब वह अस्मितानुगत योग को प्राप्त होता है। इस अस्मितानुगत योग में पुरुष की दृक्-शक्ति और बुद्धि की दर्शन-शक्ति, क्योंकि एकाकार भासित होती है, इसलिये इसको जड़-चेतन की गांठ कहा गया है। विवेक ख्याति के द्वारा ही स्फुट प्रज्ञा लोक हो जाने के बाद विवेक ख्याति से ही जड़-चेतन की गांठ खुल जाती है और ऋतम्भरा प्रज्ञा के द्वारा अन्य संस्कारों का प्रतिरोध हो जाने के बाद निर्बीज समाधि को योगी प्राप्त करता है, यही परम पुरुषार्थ है। निर्बीज समाधि प्राप्त करने के लिये मनुष्य को किन-किन उपायों का अवलम्ब लेना पड़ता है? इसके विषय में यद्यपि शास्त्रों के बहुत से मत हैं। जिनके विषय में हम आगे चलकर वर्णन करेंगे किन्तु भगवान पतंजलिजी ने इस विषय में दो सूत्रों की रचना की है—

**१. भव प्रत्ययो विदेह प्रकृति-लयानाम्।**

**२. श्रद्धा वीर्य स्मृति समाधि प्रज्ञा पूर्वक इतरेषाम्।**

इन सूत्रों के अनुसार संसार में जन्म लेने वाले प्राणियों को इस योग की प्रतीति दो ही प्रकार से होती है। उनमें—

१—पहले प्राणी वे हैं, जो अपने जन्म-जन्मान्तर के अभ्यास से सम्प्रज्ञात योग की वितर्क और विचारादि समाधि में पूर्णतः प्रविष्ट हो चुके हैं और बाद में अभी समाधि तक नहीं पहुँच पाये थे। अभी तक उनकी विवेक ख्याति नहीं हुई थी। इतनी अवस्था में ही उनका देह-पात हो गया। ऐसे योगी दो प्रकार के होते हैं। उनमें से (१) विदेह, (२) प्रकृतिलीन।

(१) विदेह—विदेह वे कहलाते हैं, जो वितर्क समाधि द्वारा स्थूल महाभूतों का और उनके विषयों का पूर्ण साक्षात्कार कर चुके हैं, इसलिए वह शरीर की यथार्थता को समझ

करके देहाभिमान से शून्य हो चुके हैं और इतनी साधना के बाद उनका शरीर छूट गया और वह सम्प्रज्ञात की आगे की सीढ़ियों तक नहीं पहुँच सके। अतः ये लोग विदेह कहलाते हैं और देव-कोटि में माने जाते हैं।

(२) प्रकृतिलीन—वे योगी हैं जो स्थूल महाभूतों और उनके गुणों का पूर्ण साक्षात्कार करते हुए निर्विचार समापत्ति से पंच तन्मात्र अहंकार और महत्तत्व और प्रकृति का साक्षात्कार कर चुके हैं। अभी तक प्रकृति के इन सूक्ष्म तत्वों का साक्षात्कार करते हुए इन्हीं में लीन रहे हैं। आगे की भूमिकाओं को तय नहीं कर पाये, अचानक देहपात हो गया। इसलिये ये लोग प्रकृतिलीन कहलाते हैं। ये भी प्राणी देव-कोटि में माने जाते हैं, इसलिए भगवान व्यासदेव जी ने इन लोगों के लिए—

**विदेहानां देवानां भव-प्रत्ययः तेहि स्वसंस्कार मात्रोपयोगेन चित्तेन कैवल्य पदमिवानु भवन्तः। स्वसंस्कार विपाकं तथा जातीय, मद्विवाह, यन्ति तथा प्रकृतिलयाः साधिकारे चेतसि प्रकृतिलीने कैवल्य पदमिवानु भवन्ति यावन्निपुनरावर्ततेऽधिकार वशाच्चित्तमिति।**

कैवल्य पदमिवानुभवन्ति कह करके भगवान व्यासदेव जी ने इनको मुक्ति पद में तो नहीं माना, किन्तु मोक्ष जैसी स्थिति के ये लोग प्रकृतिलीन होते हुए भी मोक्षपद जैसा अनुभव करते हैं, क्योंकि अभी इनका ग्रन्थि-भेद नहीं हुआ अर्थात् विवेक-ख्याति को प्राप्त नहीं हुए इसलिए इनका चित्त साधिकार है और अधिकारवश इन लोगों का संसार में जन्म होता है, क्योंकि पिछले जन्म-जन्मान्तरों में इनकी योग में ऊँची प्रगति रही थी। इसलिये बहुत लम्बे समय तक ये विदेह प्रकृतिलीन रहते हुए भी अपने आपको मुक्त आत्माओं की तरह अनुभव करते रहे थे। बुद्धि आह्लाद आमोद प्रमोद आदि विशेष भावों में लीन हुए अपने आपको आनन्द, मग्न, मोक्ष, रूप देखते रहते थे। किन्तु विवेक ज्ञान के हुए बिना इनका चित्त साधिकार है, इसलिए इन्हें संसार में दुबारा जन्म लेना पड़ता है और जन्म से ही इनको पूर्व जन्म-जन्मान्तरों में जो अभ्यास किया था, उसकी प्रतीति होने लगती है और फिर उस स्थिति को पा करके जल्दी ही अपने पूर्ण लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं। इन लोगों को कुछ हानि नहीं हुई, क्योंकि ये लोग विदेहावस्था में व प्रकृतिलीनावस्था में परमानन्द में रहे व जन्म लेने पर अनेक जन्मों में किया हुआ अभ्यास सामने आया और पुनः उसी योग-समाधि में प्रवृत्त हो गये।

इसी प्रकार योग के क्रम को समझकर अभ्यास करने वाले व्यक्ति समय पाकरके योग संसिद्ध पुरुष हो जाया करते हैं। ✿ ✿

# ॥ भव-प्रत्यय योगी—संत निमाई

❀ श्री नित्यानन्द जी

सन्त आत्मायें शैशव काल से ही अपने सत्संस्कारों को प्रकट किया करती हैं। उनके अलौकिक व्यवहार जन्म से ही परिलक्षित होने लगते हैं और ज्यों-ज्यों वे बुद्धि को प्राप्त करते हैं, उनकी दिव्य विभूति चारों ओर स्वतः फैलने लगती है। वे जगत के कल्याण के लिए उत्पन्न होते हैं और मानव जाति के कल्याण के लिए कार्य-रत रहते हैं। हम एक ऐसे ही महामानव 'निमाई' से इस लेख में परिचय करा रहे हैं।

सन्त निमाई का जन्म मायापुर ग्राम में हुआ था। पिता पं० जगन्नाथ मिश्र तथा माता शचीदेवी परम ईशनिष्ठ थे। निमाईजी एक अपूर्व प्रतिभाशाली वाचासिद्ध प्राप्त पुरुष थे। इनके मुख से जो भी निकल जाता, वह बिल्कुल सत्य होता था। एक दिन प्राचीन प्रथानुसार माता बालक को लेकर अन्य स्त्रियों के साथ गंगा स्नान गयीं। वहां से पूजन-अर्चन कर घर आकर बालक को पालने में सुलाकर अतिथि-सत्कार में लग गयीं। तब तक बालक अचानक जोरसे चिल्ला पड़ा और रोना प्रारम्भ कर दिया। बहुत प्रयत्न के बावजूद बालक चुप न हुआ। बेचारी माता असहाय भाव से गुनगुनाई—

बोल हरि बोल हरि बोल हरि बोल।
मुकुन्द माधव गोविन्द बोल॥

यह शब्द सुनकर बच्चा यकायक चुप हो गया। अब माता को चुप करने का सरल उपाय मालूम हो गया। जब भी बच्चा रोता वही भजन गाती और बच्चा चुप हो जाता।

आगे चलकर वह पं० 'निमाई' के नाम से प्रसिद्ध हो गये। एक दिन बालक खूब स्वर्ण आभूषणों से सुसज्जित अकेले घूम रहा था, तब तक एक चोर की दृष्टि बालक पर पड़ी। उसके मन में स्वर्ण आभूषणों के प्रति लालच पैदा हो गया। वह बालक से बोला—आओ बेटा! तुम्हें कंधे पर चढ़ाकर घुमाऊँ। निमाई अलौकिक थे ही, झट से बाहें फैला दीं और चोर ने अपने कंधे पर बैठा लिया। वह सोच रहा था कि कहीं एकान्त में ले जाकर आभूषण उतार लूँगा। परन्तु परम ईश-निष्ठ निमाई का स्पर्श उसे विद्युत-प्रवाह की तरह लगा, उसकी विचित्र दशा हो गई। उसका दिल ईश्वरयुक्त हो गया तथा उसकी आंखों से आंसू टपटपा रहे थे। वह बार-बार बालक के मुख को ईश्वर-सम्पन्न देख रहा था। जिस पर मधुर मुस्कान एवं चतुर्दिक कान्ति-युक्त

दीख रही थी। इधर घर पर निमाई को न देखकर सब खोजने में परेशान थे, सबसे बुरी दशा माता की थी। सब उन्हें धैर्य बँधाते कि घबराओ नहीं! बच्चा अवश्य मिल जायेगा। चोर का चित्त शुद्ध हो गया, वह निमाई को दरवाजे पर छोड़कर चुपके से चला गया। निमाई को अचानक देखकर सब प्रसन्न होगये।

धीरे-धीरे निमाई किशोरावस्था को प्राप्त कर चुके। उन पर बाल-सुलभ चापल्य तथा चमत्कारिक शक्तियां प्रदीप्त होने लगीं। बालक की अदृश्य शक्तियां प्रकट होकर लोगों को आश्चर्यचकित कर देतीं। माता-पिता की समझ में न आता कि निमाई कैसा है? एक दिन माता को अपने घर में बड़ी दिव्य-रोशनी दिखाई दी। उस अलौकिक दिव्य-रोशनी में बहुत से तेजवान देवता दीखे। उन देवताओं के तेज से निःसृत प्रकाश-पुञ्ज बालक निमाई की दिव्य पूजा कर रहे हैं। यह दृश्य देखकर माता दौड़ी हुई बालक को देखने गई, तो मालूम पड़ा कि बालक दूसरे जगह सो रहा है। पुनः एक दिन शचीदेवी ने आँगन में ध्वजा वज्र और कुश आदि चिह्नों से चिह्नित छोटे-छोटे पैर दीखे। शची ने पुनः मिश्र जी को दिखाया, मिश्रजी ने झट से उन पवित्र चरणों की धूल को माथे पर लगाया और आनन्द-विभोर हो गये। प्रेम में आनन्दित अपने भाग्य की सराहना करते हुए बोले—स्वयं बाल ठाकुर घर में जन्म लेकर घर को पवित्र कर रहे हैं। थोड़ी देर बाद वही निशान अपने पुत्र निमाई के पैरों में देखकर दंग रह गये।

इस प्रकार निमाई इस अलौकिक चमत्कारों से युक्त छः वर्ष के हो गये। पिता ने उनका विद्याध्ययन करवा दिया। बालक को खड़िया और पट्टी पढ़ने के लिए दिया जाता, परन्तु बालक निमाई में तो अपूर्व प्रतिभा पहले से विद्यमान थी। निमाई खड़िया लेकर पट्टी पर योंही उल्टी-सीधी लकीर खींचते। कभी पूरा शरीर पर खड़िया पोतकर माता से बोलते—माता भिक्षा दो। देखो! कैसा सुन्दर साधु तुम्हारे घर आया है। माता इस भाव-भंगिमा पर विभोर हो जातीं और समझतीं कि बेटा पढ़ा नहीं तो "काला अक्षर भैंस बराबर" रहेगा। माता-पिता को प्रभु का विधान ज्ञात न था कि निमाई का संचालन कहीं अस्पष्ट अदृश्य सत्तासे होरहा है। निमाई को साथियों में नाच-नाचकर "हरि बोल हरि बोल, मुकुन्द माधव गोविन्द बोल' का भजन-गाना श्रेयस्कर लगता। माता-पिता जितना ही पढ़ाई के लिए कोशिश करते निमाई उतना ही दूर रहते।

निमाई अब अपनी बाल-सुलभ क्रीड़ाओं से दुनियां वालों को शिक्षा देने लगे। निमाई तरह-तरह की दिव्य-विभूतियां से लोगों को आश्चर्ययुक्त कर देते। पशु-पक्षियां से न जाने क्या-क्या बातें करते। सबके घरों में बिना झिचके प्रवेश कर जाते और भजन गा-गाकर नाचना प्रारम्भ कर देते। स्त्रियां खूब मिठाई चढ़ातीं, खिलातीं और निमाई ईश्वर-आनन्दातिरेक में नाचते गाते।

इस तरह निमाई का अलौकिक जीवन माता-पिता तथा गांव वालों के बीच भजन में व्यतीत होता। निमाई को लोग श्रद्धा-प्रेम से स्वयं अपने घर बुलाते और ज्ञान की विचित्र कथाएँ सुनकर स्वयं को धन्य मानते और विचित्र विभूतियों को देखकर श्रद्धा से चरणों में गिर पड़ते।

पूर्व प्रकाशित से आगे—

# योगेश्वर चरित्र माला

❀ आनन्दकन्द योग-योगेश्वर श्री सद्गुरुदेव जी द्वारा

## बरहन ग्राम व ठाकुरदास जी पर कृपा

इसी भ्रमण काल में घूमते हुए श्री प्रभुजी हाथरस आये और हाथरस से छोटे-छोटे गांवों में विचरते हुए बरहन गांव में पहुँचे। बरहन में ठाकुरदास नाम के एक तपस्वी भक्त निवास करते थे। ये जन्मकाल से ही साधु-महात्माओं के सेवक थे। पूर्ण विनयी और आदर्श भक्त थे। अकस्मात् श्री प्रभुजी के बरहन गांव में दर्शन पाकर कृतकृत्य हो गये। कुछ दिनों में श्री प्रभुजी ने बरहन में निवास किया। अनेकों प्राणियों का भला किया। बरहन के निवास-काल में श्री प्रभुजी ने भक्त ठाकुरदास जी को अनेकों योग-साधनों की सरल साधनाओं का उपदेश किया व अनेकों आयुर्वेदिक अनुभूति योग बतलाये। उनको आशीर्वाद दिया कि तुम दुःखी लोगों की निष्काम चिकित्सा करो। इससे तुम्हारा बहुत पुण्य होगा और लोगों का सब प्रकार से कल्याण होगा। यह चिकित्सा कार्य तुम्हारे घर में भली प्रकार से चलता रहेगा। श्री प्रभुजी के कृपामय आशीर्वाद से भक्त ठाकुरदास जी सब तरह से कृतकृत्य हो गये। उनका घर उसी दिन से धन-धान्य पूर्ण हो गया। बरहन में आजकल भी उनके सुपुत्र सब प्रकार से सुयोग्य-चिकित्सक हैं।

## गांव सवांई में आगमन व लाला प्यारेलाल पटवारी को दर्शन

कुछ दिन बरहन में निवास करने के बाद श्री प्रभुजी विचरते-विचरते सवांई गांव में आये। सवांई गांव बहुत छोटा-सा गांव है। इस गांव में ला० प्यारेलाल नाम के एक पवित्र पुण्यात्मा पटवारी निवास करते थे। आप जाति से कुलश्रेष्ठ कायस्थ थे, और जन्म से ही पुण्यशील थे तथा ईश्वर के परम भक्त थे। ईश्वर भक्तों से, ब्राह्मणों से आपका स्वाभाविक प्रेम था। कहीं पर कोई भी सत्संग की कैसी भी चर्चा चलती या ईश्वर का गुणानुवाद होता वहां आप स्वभाव से ही उपस्थित रहते थे। महात्माओं के दर्शन एवं उनकी सेवा

का लाभ लेने में आप अपना अहोभाग्य समझते थे। मन में हर समय सन्तों के दर्शन करने की दृढ़ लगन लगी रहती थी। इसी लगन में ला० प्यारेलाल जी गांव से बाहर विचर रहे थे तो अकस्मात् सब प्रकार से कल्याण-निधि श्रीप्रभु जी के दर्शन प्राप्त हुए। ला० प्यारेलाल जी ने विनीत भावसे श्री प्रभुजी के चरणाविन्द में प्रणाम किया। प्रार्थना करके उन्हें अपने साथ लिवा लाये और अपने स्थान पर ठहरा लिया। भक्ति-भाव से श्री प्रभुजी की सेवा करने लगे। सत्संग का प्रभाव शनैः शनैः बढ़ने लगा। हर समय स्त्री-पुरुषों व बालक-बालिकाओं की भीड़ अनवरत बनी रहने लगी। जो जिस कामना को लेकर आता था, वह पूर्ण होती थी। काफी समय तक ला० प्यारेलाल जी ने श्री प्रभुजी को भक्ति-भाव से अपने यहां ठहरा रखा। उस समय श्री प्रभुजी रात्रि के समय एक खास औषधि का निर्माण किया करते थे और रात्रि में ही कई सौ पुड़ियां बनाकर रख लिया करते थे। प्रातःकाल होते ही असंख्य मरीज द्वार को घेर कर बैठ जाया करते थे। प्रातःकाल होते ही श्री प्रभुजी उन पुड़ियाओं को सब प्रकार के मरीजों में बँटवा दिया करते थे। बड़े भारी आश्चर्य की बात तो यह थी कि जो प्राणी जिस तकलीफ को लेकर आता था, उन्हीं पुड़ियों से सभी व्यक्तियों को पूरा-पूरा लाभ होता था। औषधि का तो केवल मात्र बहाना था, वस्तुतः उनकी कृपा ही प्राणीमात्र के कल्याण का कारण थी।

## गुफा का निर्माण

कुछ दिन ला० प्यारेलाल जी के यहां निवास करने के बाद श्री प्रभु जी के मन में एकांतवास की भावनाएँ अधिकाधिक जाग्रत होने लगीं। जिस दिन से ला० प्यारेलाल जी के स्थान पर श्री प्रभुजी ने निवास किया, उसी दिन से ला० प्यारेलाल जी के घर में सकल सम्पत्तियां वास करने लगीं। घर धन-धान्य से पूर्ण हो गया। सकल व्याधियां दूर हो गईं। विघ्न-बाधाओं का सर्वथा अभाव हो गया। दिन-दूना, रात चौगुना सम्मान बढ़ने लगा। उन्हीं दिनों ला० प्यारेलाल जी के घर में उनके पौत्र का जन्म हुआ, जिससे ला० प्यारेलाल जी के मन में खुशी का पारा-वार न रहा और उन्होंने श्री प्रभुजी के चरण-कमलों में प्रार्थना की कि—प्रभुजी! आप कृपा करके कोई सेवा बतलाइये जिसको करके मैं अपना जीवन सफल बना सकूं। श्री प्रभुजी ने प्रसन्नता में आकर आज्ञा दी कि हम एकांत वास करना चाहते हैं। इसलिए तुम एक गुफा तैयार कराओ जिसमें हम हर प्रकार के जन-समुदाय से अलग रह सकें। उसके साथ एक तालाब और बनवाओ जिसमें हम स्नान कर सकें। ला० प्यारेलाल जी ने श्री प्रभुजी की पवित्र आज्ञा को सुन करके अपने बागमें मज-दूरों को लगा करके व गांव के अन्य प्रेमियों को साथ ले करके एक तालाब खुदवाया जिसमें

श्री प्रभुजी स्नान किया करते थे। तालाब के निकट ही कदम के नीचे गांव के सब लोगों ने मिलकर एक गुफा बनाई। जिस समय लोग गुफा का निर्माण कर रहे थे, श्री प्रभुजी ने कहा कि यहां गुफा नहीं बन सकती। किन्तु गांव के लोगों ने उनकी आज्ञा को नहीं माना और प्रेम-विभोर हो करके यहां ही गुफा का निर्माण करने लगे। बहुत प्रयत्नों के साथ गुफा बनकर तैयार हुई। किन्तु जिस समय सब लोग गुफा बनाकर बाहर बैठे तो यकायक गुफा गिर गई। लोगों को बड़ा भारी आश्चर्य हुआ। लोगों के विचार में आया कि गुफा की छत कुछ पतली रह गई होगी, छत काफी मोटी होनी चाहिये थी। इसी विचार से उन्होंने वहीं दुबारा गुफा बनाना आरम्भ कर दिया। श्री प्रभुजी ने फिर भी बार-बार मना किया कि यहां गुफा नहीं बनेगी। किन्तु लोगों को अपनी बुद्धि-बल पर बड़ा विश्वास था कि हम यहां पर गुफा बनाकर ही रहेंगे। इसी आधार पर लोगों ने बड़े प्रयत्न के साथ उसी स्थान पर दूसरी गुफा और तैयार की। किन्तु वह भी गुफा कायम न रह सकी और थोड़ी देर बाद फिर गई। लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। लोग मन में विचार करने लगे कि हम बड़ा भारी प्रयत्न करते हैं, किन्तु इतना प्रयत्न करने पर भी हम बराबर विफल होते जा रहे हैं। मालूम पड़ता है कि इस गुफा के बनाने में श्री प्रभुजी का संकल्प नहीं है। इसलिए अबकी बार इनसे पूछकर ही इनके बताये हुए स्थानपर गुफा का निर्माण करें। यह विचार कर श्री प्रभुजी से प्रार्थना की कि, प्रभो! हमने काफी प्रयत्न कर लिया है, किन्तु सफलता नहीं मिल रही है। अब आप कृपा करके जिस स्थान की आज्ञा देंगे, उसी स्थान पर हम गुफा का निर्माण करेंगे। लोगों के पवित्र विचारों को जान करके श्री प्रभु जी ने प्रसन्नतापूर्व बाग के दक्षिणी भाग में नीमों के नीचे कंकरीली जमीन में गुफा बनाने की आज्ञा प्रदान की। लोगों ने बड़े उत्साह के साथ कई दिन लगा करके वहां गुफा का निर्माण किया, जो आजकल भी 'श्री सिद्ध गुफा' के नाम से प्रख्यात है। इस गुफा में श्री प्रभुजी ने काफी दिनों तक निवास किया। गुफा से लगभग ४० कदम की दूरी पर ला० प्यारेलाल जी ने एक छोटा सा तालाब तैयार करवा दिया, जिसमें श्री प्रभुजी नित्य स्नान किया करते थे। श्री प्रभुजी ने इस तालाब का नाम अमृतकुण्ड रखा।

## तालाब में शक्तिपात व अमृतकुण्ड नाम

ग्रामवासियों के पवित्र प्रेम-भाव व लाला प्यारेलाल की सेवाओं से प्रसन्न होकर श्री प्रभुजी ने इस छोटे से जलाशय में शक्तिपात किया और कहा कि इस तालाब में जो भी

चर्म रोगी स्नान करेगा, उसकी तकलीफ दूर हो जायेगी। और सब बीमार बच्चे स्नान-मात्र से ठीक हो जायेंगे। जो लोग गुफा की पवित्र रज को सेवन करेंगे और इस पवित्र अमृतकुण्ड में स्नान करेंगे, उनके सब प्रकार के दुःख भी दूर हो जायेंगे। परिणाम बिल्कुल यही हुआ। दूर-दूर के सैकड़ों प्राणी अपने बच्चों को तालाब में स्नान कराकर ले गये और उनके रोगों की पूरी तरह से निवृत्ति हो गई। अब भी इस प्रकार के व्यक्ति मौजूद हैं, जो अमृतकुण्ड का प्रत्यक्ष प्रभाव अपने मुख से बतलाया करते हैं। श्री प्रभुजी के वरदान के बाद तालाब में सैकड़ों लोग चर्म-रोगी व सूखा बाय के रोगी बच्चे इस कुण्ड में नहाकर ठीक हुए हैं और अभी तक बराबर ठीक हैं। उनमें से ठा० भूपसिंह, दौलतराम आदि प्रत्यक्ष प्रमाण का विषय हैं। यह अब भी मौजूद हैं। इन लोगों को सूखे की बीमारी से अत्यन्त क्षीण हालत में घर वालों ने स्नान कराया जिसके फलस्वरूप वे सब प्रकार से ठीक हो गये। चर्म रोग व सूखा बाय के रोगियों के लिए श्री प्रभुजी ने यह नियम रखा था कि ये लोग सवस्त्र तालाब में स्नान करें। बाद में गीले वस्त्र उतार कर वहीं फेंक दें और नये वस्त्र पहन कर घर जायें। ऐसा करने से वे बिल्कुल निःरोग हो जायेंगे। जिन लोगों ने अमृतकुण्ड में स्नान किया, परिणाम वैसा ही होता रहा। यानी वे सब नीरोग होते गये।

अमृतकुण्ड और गुफा के निर्माण हो जाने के बाद श्री प्रभुजी इस स्थान पर निरन्तर वास करने लगे। दर्शनार्थी लोगोंकी शनैः-शनैः भीड़ बढ़ने लगी। अनेक प्रकार से लोग अपनी मनो-कामनाओं को पा करके अपने जीवन को सफल बनाने लगे। किन्तु एक बड़ा भारी यह आश्चर्य था कि श्री प्रभुजी के जटा-जूटधारी अलौकिक विरक्त शरीर के दर्शन पाकर लोग साक्षात् उन्हें महादेव जी समझते रहे थे। सर्वसाधारण का यह साहस नहीं होता था कि सहसा उनके पास आ जावें। इसके साथ-साथ और भी भयानक बात यह हुई थी कि ज्योंही लोग बाग में प्रवेश करते थे तो उनको चारों ओर सर्प नजर आते थे। महा भयङ्कर सर्पों को देख करके लोगों का साहस बिल्कुल मन्द हो जाता था। निराश होकरके अपने आपको हतभाग्य समझकर सब अपने घरों को लौटने लगते। लोगों की महान निराशा को देखकर श्रीप्रभुजी ने उनको सान्त्वना दी कि—भाई! तुम घबराओ नहीं। तुम निःसंकोच मेरे पास ठहरो। ये सर्प तुमसे बिल्कुल कुछ नहीं कहेंगे किन्तु अपनी ओर से तुम इन्हें मारने का प्रयत्न न करना। श्रीप्रभुजी की इस प्रकार की पवित्र आज्ञाको पाकरके लोगों का साहस और भी बढ़ने लगा और उनका यातायात पूर्ववत् बाग में जारी रहने लगा।

卐

# 卐 सदाशिव और जीव

❀ ज्योतिष कलानिधि श्री शिवनाथ मेहरोत्रा

अहंकाराभिमानेन जीवः
स्याद्धि सदाशिवः ॥
स न्याविवेक प्रकृति
सङ्गत्या तत्र मुह्यते ॥
( त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद् )

अहंकार से युक्त हो जाने के कारण सदाशिव को जीव-कोटि में आना पड़ता है। अविवेक और प्रकृति का संयोग ग्रहण कर वह मोह में पड़ जाता है।

सदाशिव अपने स्वरूप में स्थित होकर सदाशिव ही हैं परन्तु जब जीव के रूप में वे अवतरित होते हैं तब स्वेच्छा से प्रकृति और मोह को अपनाये हुए से विचरते हैं। जो चिता-भस्म उन पर लिपटी हुई है वह उनका प्राकृतिक विलास मात्र है। हम सभी मूल रूप में शिव होते हुये भी आत्म-स्वीकृति और स्वेच्छा द्वारा ही मोह, अविवेक और माया-रूपी अपवित्रता को लपेटे हुए हैं। वस्तुतः मोह प्रकृति, माया इत्यादि ही अवास्तविक हैं, सदाशिव ही एकमात्र तत्त्व हैं।

यह सृष्टि रूपी सदाशिव की अवतारणा जो दिखाई पड़ती है वह उस सच्चिदानन्द का आंशिक किलोल मात्र है। वास्तव में तो वह सदा अपने आप में आनन्द समुद्र में विराजमान है। अपने अद्भुत शक्ति सामर्थ्य के प्रकाश के प्रभाव से अपने एक अंश मात्र से उसने असंख्य रूपों में निवास किया हुआ है। इसी बात को समझाने के लिए वेद कहते हैं—

एकांशेन स्थितं जगत् ।

ऐसी स्थिति में मुक्ति, बन्धन और जाग्रत स्वप्न, सुषुप्ति आदि बहुत सी अवस्थायें केवल जीव भाव में दिखाई पड़ने व समझने योग्य होती हैं। उस सदाशिव की ज्योति के स्फुलिंग जब पुनः अपनी मूल ज्योति में प्रवेश पा जाते हैं तब विविध सांसारिक अनुभूतियों का विलोप हो जाता है।

वास्तविकता तो यही है कि सदाशिव के अनुग्रह से ही जीव बना। सदाशिव पुनः अपने शिव-स्वरूप में अधिष्ठान पाता है परन्तु यह भी सत्य है कि सदाशिव रूपी जीव यदि कोई भी इच्छा करे तो उसे पूर्ण करके ही दम लेता है। प्रारम्भ में जब सच्चिदानन्दघन ब्रह्म अपने आप में एक था उस समय उसे यह इच्छा मात्र हुई कि—

## एकोऽहं बहुस्याम: ।

परिणाम स्वरूप उस एक ने अपने आपको एक ही क्षणमें अनन्त रूपों में प्रकट कर दिया।

उस एक संकल्प के प्रभाव से ही तो समस्त सृष्टि हो गई। नारंगी एक है परन्तु उसके अन्दर विविध स्वरूपों में उसके गुण रम रहे हैं वैसे ही परमेश्वर एक है परन्तु उसमें अवस्थित हम सब अंग व स्वरूप उसके गुणों से ओत-प्रोत हैं।

इसी कारण जो कुछ भी संकल्प हम आज करते हैं वह सब पूरा करने में हमारी शक्ति लग जाती है और हम स्वयं सदाशिव के प्रकृत रूप होने के कारण हमारे प्रत्येक संकल्प को निश्चित् रूप से मूर्त्त होना पड़ेगा।

तो हमें दुःख क्यों होता है ? हर एक तो सुख का अभिलाषी है। फिर दुःख की उत्पत्ति कहां से आ गई ? यह दुःख भी शिवमय ही है। सच कहा जाये तो जब तक हमें दुःख की तप्तता नहीं मिलती हम सिद्ध नहीं हो पाते। दुःख ही वह आग है जो पकाकर परिपक्व करती है। अपक्व अन्न पक जाता है तो उसे सिद्ध माना जाता है। वैसे ही अपक्व मन को दुःख के ताप से पक कर आत्म-तत्त्व की शरण में पहुँचने की सूझती है। अतः यदि दुःख की अनुभूति न हो तो शाश्वत सुख को पाने के लिए जीव की दौड़ ही प्रारम्भ न हो। अतः दुःख जिसे कहा जाता है वही तो सुख का प्रारम्भिक बिन्दु है। इसी बात को समझ कर शक्ति के उपासक शक्ति के अन्धकारमय स्वरूप की भी उपासना करते हैं।

अतएव हमारे संकल्पों का प्रवाह जब तक सांसारिक कामनाओं की ओर रहेगा हमें सांसारि दुःखों व सुखों से ओत-प्रोत रहना होगा। इन संकल्पों को हम जिस क्षण स्वगृह की वापसी के लिए प्रेरित कर देंगे उसी क्षण से सदाशिव स्वरूप की उपलब्धि के लिये वे काम करने लगेंगे। जिस दिन हम मन को शिव-संकल्प से पूरित करेंगे शिवत्व की प्राप्ति का कार्य प्रारम्भ हो जायेगा और वह पूर्ण होकर ही रहेगा। अन्तः प्रवेश ही इसकी एक-मात्र कुंजी है।

---

## ❀ उपदेश ❀

प्रिय भाषण पुनि नम्रता, आदर, प्रीति, विचार।
श्रद्धा, क्षमा, अयाचना, यह भूषण उर धार॥
कथनी मीठी खांड़ सी, करनी विष सी लोय।
कथनी तजि करनी करै, विष से अमृत होय॥
पतिव्रता मैली भली, काली कठिन कुरूप।
पतिव्रता के रूप में, वारों कोटि सुरूप॥

#卐 योग तथा उसके अंगों का निरूपण

❀ श्री मानिकचन्द ऊमर वैश्य

पर और अपर भेद से आत्मा दो प्रकार का कहा जाता है। अथर्ववेद की श्रुति भी कहती है कि दो ब्रह्म जानने योग्य हैं। पर-आत्मा अथवा पर-ब्रह्म को निर्गुण बताया गया है तथा अपर आत्मा या अपर ब्रह्म अहंकारयुक्त (जीवात्मा) कहा गया है। इन दोनों के अभेद का ज्ञान "ज्ञानयोग" कहलाता है। इस पंच-भौतिक शरीर के भीतर हृदय-देश में जो साक्षी रूप में स्थित है, उसे साधु पुरुषों ने अपरात्मा कहा है तथा परमात्मा पर (श्रेष्ठ) माने गये हैं। शरीर को क्षेत्र कहते हैं। जो क्षेत्र में स्थित आत्मा है, वह क्षेत्रज्ञ कहलाता है। परमात्मा अव्यक्त, शुद्ध एवं सर्वत्र परिपूर्ण कहा गया है, जब जीवात्मा और परमात्मा के अभेद का ज्ञान हो जाता है, तब अपरात्मा के बन्धन का नाश हो जाता है। परमात्मा एक शुद्ध, अविनाशी, नित्य एव जगत्रूप है। वे मनुष्यों के बुद्धि-भेद से भेद-भाव से दिखाई देते हैं। उस निर्गुण परमात्मा का न कोई रूप है, न रंग है, न कर्तव्य कर्म है और न कर्तृत्व या भोक्तृत्व ही है। वे सब कारणों के भी आदि कारण हैं, सम्पूर्ण तेजों के प्रकाशक परम तेज हैं, उनसे भिन्न दूसरी कोई वस्तु नहीं है। मनुष्य को मुक्ति के लिए परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

शब्द ब्रह्ममय जो महावाक्य है, जैसे तत्त्वमसि, सोऽहमस्मि इत्यादि। उन पर विचार करने से जीवात्मा और परमात्मा का अभेद ज्ञान प्रकाशित होता है। यह मुक्ति का सर्व श्रेष्ठ साधन है। जो उत्तम ज्ञान से हीन हैं, उन्हें यह जगत् नाना भेदों से युक्त दिखाई देता है। परन्तु परम ज्ञानियों की दृष्टि में यह सब परब्रह्म रूप है। परमानन्द स्वरूप, परात्पर, अविनाशी एवं निर्गुण परमात्मा एक ही है। किन्तु बुद्धिभेद एवं भिन्न-भिन्न अनेक रूप धारण करने वाले प्रतीक होते हैं। योगी पुरुष योग के द्वारा अज्ञान का नाश करे। योग के आठ अंग हैं—

**यमाश्च नियमाश्चैव आसनानि च सत्तम् प्राणायामः प्रत्याहारो धारणा ध्यानमेव च समाधिश्च मुनिश्रेष्ठ योगांनि यथा क्रमम्।**

—नारद पुराण, पूर्वभाग ३३/७३-७४

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये योग के आठ अङ्ग हैं।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अक्रोध और अनसूया—ये यम बतलाये गये हैं। सम्पूर्ण प्राणियों से किसी को भी जो कष्ट न पहुँचाने का भाव है, उसे सत्पुरुषों ने 'अहिंसा' कहा है। अहिंसा योग-मार्ग में सिद्धि प्रदान करने वाली है। धर्म और अधर्म का विचार रखते हुए जो यथार्थ बात कही जाती है, उसे श्रेष्ठ पुरुष 'सत्य' कहते हैं। चोरी से या बलपूर्वक जो दूसरे के धन को हड़प लेता है, वह साधु पुरुषों द्वारा 'स्तेय' कहा गया है। इसके अतिरिक्त किसी की वस्तु को न लेना 'अस्तेय' है। सब प्रकार के मैथुन का त्याग 'ब्रह्मचर्य' कहा गया है। आपत्ति काल में भी द्रव्यों का संग्रह न करना 'अपरिग्रह' कहा गया है। वह योग-मार्ग में उत्तम सिद्धि प्रदान करने वाला है।

जो अपना उत्कर्ष जताते हुए किसी के प्रति अत्यन्त कठोर वचन बोलता है, उसके उस क्रूरतापूर्वक भाव को धर्मज्ञ पुरुष 'क्रोध' कहते हैं। इसके विपरीत शान्त भाव का नाम 'अक्रोध' है। धन आदि के द्वारा किसी को बढ़ी देखकर डाह के कारण जो मन में संताप होता है, उसे साधु पुरुषों ने 'असूया' (ईर्ष्या) कहा है। इस असूया का त्याग ही 'अनसूया' है। इस प्रकार संक्षेप में यही यम बतलाया गया है।

तप, स्वाध्याय, सन्तोष, शौच, आराधना तथा संध्योपासना आदि 'नियम' कहे गये हैं। जिसमें 'चान्द्रायण' आदि व्रतों से शरीर को कृश किया जाता है, उसे 'तप' कहते हैं। यह योग-मार्ग का उत्तम साधन है।

मन्त्रों का जप, उपनिषद् आदि ग्रन्थों का पाठ करना 'स्वाध्याय' कहलाता है, यह भी योग-मार्ग का उत्तम साधन है। जो मूढ़ स्वाध्याय छोड़ देता है, उसका योग-सिद्ध नहीं होता, किन्तु योगके बिना भी केवल स्वाध्याय मात्र से मनुष्यों के पाप का नाश हो सकता है। स्वाध्याय से सन्तुष्ट किये हुए इष्ट-देवता प्रसन्न होते हैं।

प्रारब्ध के अनुसार जो कुछ मिल जाय, उसी से प्रसन्न रहना 'सन्तोष' कहलाता है। सन्तोषहीन पुरुष कहीं सुख नहीं पाता। भोगों की कामना भोग-वस्तुओं को भोग लेने से शान्ति नहीं होती। अपितु इनसे भी अधिक भोग सब मुझे मिलेगा—इस प्रकार कामना बढ़ती ही रहती है। अतः कामना का त्याग कर दैवात् जो कुछ मिले, उसी से सन्तुष्ट रह कर मनुष्य को धर्म-पालन में लगे रहना चाहिए। बाह्य शौच और आभ्यान्तर शौच के भेद से शौच दो प्रकार का माना गया है। मिट्टी और जल से जो शरीर को शुद्ध किया जाता है, वह बाह्य शौच है और अन्तःकरण के भाव की शुद्धि की जाती है उसे आभ्यान्तर शौच कहा गया है।

जो आन्तरिक शुद्धि से रहित होकर केवल बाहर से शरीर को शुद्ध करता है। वह ऊपर से सजाये हुए मदिरामात्र की तरह अपवित्र ही है उसे शान्ति नहीं मिलती। जो मानसिक शुद्धि से हीन होकर तीर्थयात्रा करते हैं, उसे वे तीर्थ उसी तरह पवित्र नहीं करते। जैसे मदिरा से भरे हुए पात्र को नदियां। जिसका अन्तःकरण शुद्ध है, वे यदि परम उत्तम धर्म-मार्ग का आचरण करते हैं, तो उसका फल अक्षय एवं सुखदायक मानना चाहिये।

यम और नियमों द्वारा बुद्धि को स्थिर करके जितेन्द्रिय पुरुष योग-साधना के अनुकूल उत्तम आसन का विधिपूर्वक अभ्यास करे।

पद्मासन, स्वस्तिकासन, पीठासन, सिंहासन, कुक्कुटासन, कुञ्जरासन, कूर्मासन, वज्रासन, वाराहासन, मृगासन, चैलिकासन, क्रौंचासन, नालिकासन, सर्वतो भद्रासन, वृषभासन, नागासन, मत्स्यासन, व्याघ्रासन, अर्धचन्द्रासन, दण्डवातासन, शैलासन, खड्गासन, मुद्रासन, मकरासन, त्रिपथासन, काष्ठासन, स्थाणु-आसन, वैकर्णिकासन, भौमासन और वीरासन ये सब योग-साधन के हेतु हैं।

मुनीश्वरों ने यही तीस आसन बतलाये हैं। साधक पुरुष शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वों से पृथक् हो ईर्ष्या, द्वेष छोड़कर गुरुदेव के चरणों में भक्ति रखते हुए उपर्युक्त आसनों में से किसी एक आसन को सिद्ध करके प्राणों को जीतने का अभ्यास करे। जहां मनुष्यों की भीड़ न हो और किसी प्रकार का कोलाहल न होता हो। ऐसे एकान्त स्थान में पूर्व, उत्तर अथवा पश्चिम की ओर मुख करके अभ्यास पूर्वक प्राणों को जीते—प्राणायाम का अभ्यास करे।

शरीर के भीतर स्थित वायु का नाम प्राण है, उसको वश में करने की चेष्टा को आयाम यही 'प्राणायाम' कहा गया है। इसके दो भेद बतलाये गये हैं—एक अगर्भ प्राणायाम, दूसरा सगर्भ प्राणायाम, इनमें दूसरा श्रेष्ठ है। जप और ध्यान के सहित किये जाने वाले प्राणायाम को 'सगर्भ' प्राणायाम कहते हैं। मनीषी पुरुषों ने इन दो भेदों वाले प्राणायामों को रेचक, पूरक, कुम्भक और शून्यक के भेद से चार प्रकार का बताया है। जीवों की दाहिनी नाड़ी का नाम पिंगला है। उसके देवता सूर्य हैं। उसे पितृ-योनि भी कहते हैं। इसी प्रकार बायीं नाड़ी का नाम इड़ा है, जिसे देव-योनि भी कहते हैं। उसका अधिदेवता चन्द्रमा है। इन दोनों के मध्य भाग में सुषुम्ना नाड़ी है। यह अत्यन्त सूक्ष्म नाड़ी है, इसके अधिदेवता ब्रह्मा जी हैं।

नासिका के बायें छिद्र से वायु को बाहर निकालें। रेचक करने (निकालने) के कारण इसका नाम रेचक प्राणायाम कहते हैं। फिर नासिका के दाहिने छिद्र से वायु को भीतर

भरे। वायु को पूर्ण करने (भरने) के कारण इसे पूरक प्राणायाम कहा गया। अपने देह में भरी हुई वायु को रोके रहे, छोड़े नहीं। भरे हुए कुम्भ ( घड़े ) की भाँति स्थिर रूप से बैठा रहे। कुम्भ की भाँति स्थित होने के कारण इसे इसे कुम्भक प्राणायाम कहते हैं। बाहर की वायु को न तो भीतर की ओर ग्रहण करे और न भीतर की वायु को बाहर निकाले, जैसे हो वैसे ही स्थित रहे। इस तरह के प्राणायाम को शून्यक प्राणायाम कहते हैं। जैसे मतवाले गजराज को धीरे-धीरे वश में किया जाता है, उसी प्रकार प्राण को धीरे-धीरे जीतना चाहिए, अन्यथा बड़े-बड़े भयङ्कर रोग हो जाते हैं। इसलिये सद्गुरु की शरण में रहकर यौगिक क्रियाओं को साधना चाहिए। जो यात्री क्रमशः वायु को जीतने का अभ्यास करता है, वह निष्पाप हो जाता है और सब पापों से मुक्त होने पर वह ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है।

जो विषयों में फँसी हुई इन्द्रियों को विषयों से सर्वथा समेटकर अपने भीतर रोके रहता है, उसके इस प्रयत्न का नाम 'प्रत्याहार' है। जिन्होंने प्रत्याहार द्वारा अपनी इन्द्रियों को जीत लिया है। वे महात्मा पुरुष ध्यान न करने पर भी पुनरावृत्त रहित परब्रह्म पद को प्राप्त कर लेते हैं। जो इन्द्रिय-समुदाय को वश में किये बिना ही ध्यान में तत्पर होता है उसे मूर्ख समझना चाहिए और उसका ध्यान सिद्ध नहीं होता।

मनुष्य जिस-जिस वस्तु को देखता है, उसे अपनी आत्मा में आत्म-स्वरूप समझे और प्रत्याहार द्वारा वश में की हुई इन्द्रियों को अपने आत्मा में ही अन्तर्मुख करके धारण करना है, उसी को 'धारणा' कहते हैं। योग ( प्रत्याहार ) से इन्द्रियों के समुदाय को जीत-कर धारणा द्वारा उन इन्द्रियों को दृढ़तापूर्वक हृदय में धारण कर लेने के पश्चात् साधक उन परमात्मा का ध्यान करे, जो सबका धारण-पोषण करने वाला है, जो कभी भी अपनी महिमा से च्युत नहीं होता है। सम्पूर्ण विश्व उसी का स्वरूप है। समस्त लोकों के एक मात्र कारण वे ही हैं।

उस ईश्वर का ध्यान करना चाहिए। ध्येय वस्तु में चित्त की वृत्ति का एकाकार हो जाना ही साधु पुरुषों द्वारा ध्यान कहा जाता है। दो घड़ी ध्यान करके भी मनुष्य परम मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। यथा—

ध्यानात्पापानि नश्यन्ति,<br>
ध्यानान्मोक्षं च विन्दति।<br>
ध्यानात्प्रसीदति हरिः,<br>
ध्यानात्सर्वार्थ साधनम्॥

—नारद-पुराण-पूर्व भाग ३३-१३६

ध्यान से पाप नष्ट होते है। ध्यान से मोक्ष

मिलता है। ध्यान से भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं। ध्यान से सम्पूर्ण मनोरथ सिद्धि हो जाती है। ध्येय वस्तु में मन को इस प्रकार स्थिर कर देना चाहिये कि ध्याता, ध्यान और ध्येय की त्रिपुटी का तनिक भी भाव न रह जाय। तब ज्ञानरूपी अमृत के सेवन से अमृत-तत्व (परमात्मा) को प्राप्त कर लेता है।

निरन्तर ध्यान करने से ध्येय वस्तु के साथ अपना अभेद भाव स्पष्ट अनुभव होता है। जिसकी सब इन्द्रियां विषयों से निवृत्त हो जाती हैं और वह परमानन्द से पूर्ण हो वायु शून्य स्थान में जलते हुए दीपक की भांति अविचल भाव से ध्यान में स्थिर हो जाता है, तो इस ध्येयाकार स्थिति को "समाधि" कहते हैं।

योगी पुरुष समाधि अवस्था में न देखता है, न सुनता है, न सूँघता है, न स्पर्श करता है और न वह कुछ बोलता ही है। उस अवस्था में योगियों को सम्पूर्ण उपाधियों से मुक्त, शुद्ध, निर्मल, सच्चिदानन्द स्वरूप तथा अविचल आत्मा का साक्षात्कार होता है।

यह आत्मा परमज्योतिर्मय तथा अभेद है। परमात्मा इस हृदय-गुफा में स्थित है। वह परमात्मा सूक्ष्म से भी अत्यन्त सूक्ष्म महान् से भी अत्यन्त महान् है। वह सनातन परमेश्वर समस्त विश्व का कारण है। योगी परम पवित्र परात्पर ब्रह्म रूप में उसका दर्शन करते हैं। अकार से लेकर हकार तक के भिन्न-भिन्न वर्णों के रूप में स्थित अनादि पुराण पुरुष परमात्मा को ही शब्द ब्रह्म कहते हैं। जो विशुद्ध, अक्षर, नित्य, पूर्ण हृदयाकाश के मध्य विराजमान अथवा आकाश में व्याप्त, आनन्दमय, निर्मल एवं शान्त तत्त्व है, उसी को परब्रह्म' परमात्मा कहते हैं।

योगी लोग अपने हृदय में जिन अजन्मा, शुद्ध विकार रहित सनातन परमात्मा का दर्शन करते हैं, उन्हीं का नाम परब्रह्म है।

मनुष्य को अपने सद्गुरु के बतलाये हुए मन्त्रों का जप करते हुए श्रद्धापूर्वक उसी परब्रह्म का ध्यान करना चाहिए, जिससे आवागमन से मुक्ति मिल जाय।

—※०※—

---

**यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः।**

( वैशेषिक १/१/२ )

जिससे लौकिक ऐश्वर्य और पारलौकिक आनन्द की सिद्धि हो, वह धर्म है।

धर्म वह है जिससे आज का जीवन, वर्त्तमान का जीवन, अच्छा हो, और कल का जीवन, भविष्य का जीवन और भी अधिक अच्छा हो।

जिससे अभ्युदय अर्थात् ऐहलौकिक सुख एवं जीवन्मुक्ति और निःश्रेयस ( मोक्ष ) की सिद्धि हो, वही धर्म है।

# माया, महामाया तथा योग-माया

❀ यो० श्री पारसनाथ जी

पुस्तकों के पढ़ने से ही माया, महामाया और योग-माया का भेद नहीं मालूम हो सकता। इस विषय को वस्तुतः वही जान सकता है कि जिसे समाधि के द्वारा अनुभव करने की क्षमता प्राप्त हो।

परमात्मा ने जब जगत्-प्रपञ्च रचने की इच्छा की तब इच्छा-शक्ति पैदा हुई। वही साकार इच्छा-शक्ति जगत्-रचना में मुख्य कारण है।

कर्त्री इच्छादेवी ने ही तीन प्रकार की माया को उत्पन्न किया। उन्हीं को योगमाया, महामाया तथा माया कहते हैं।

परमात्मा में समस्त तत्त्व घनतत्त्व हो रहे हैं। थोड़े से घनतत्त्व को लेकर इच्छा-शक्ति ने योगमाया के द्वारा समस्त तत्त्वों का पृथक्करण किया। मिले हुए तत्त्वों को अलग-अलग किया और उन सब तत्त्वों के नक्शे में अपने आप ही योगमाया व्यापक होकर बैठ गई। एक से लेकर दस शङ्ख तक की पूरी संख्या को बनाया है इच्छा-शक्ति ने, परन्तु एक को दूसरी संख्या से जुदा करना और हरेक संख्या की कीमत स्थिर रखना—यह योगमाया का काम है। सृष्टि के परिपूर्ण हिरण्यगर्भ में तदाकार व्यापकता रखना योगमाया का काम है। कलम बतौर इच्छा-शक्ति है। परन्तु, कलम के अक्षरों में जो व्यापक स्याही है—वह योगमाया है। मेरी राय से इस लेख की सुरखी में एक कमी रह गई है। माया के भेद तीन नहीं चार हैं। जब तक चारों रूपों की आलोचना न की जायगी, माया-मण्डल से पूरी जानकारी न हो सकेगी। पूरी सुरखी यों है—

माया, महामाया, योगमाया तथा इच्छा-शक्ति का भेद।

## इच्छा-शक्ति की परिभाषा

जब सृष्टि नहीं थी तब केवल परमात्मा था। एकाएक उस परम-तत्त्व-सागर में यह विचार पैदा हुआ कि 'हमीं हम हैं—अब यह देखना चाहिये कि हम में कैसा ज्ञान है और कितनी शक्ति है?'

यह जानकर भी कि सम्पूर्ण ज्ञान एवं सम्पूर्ण शक्ति के केन्द्र हमीं है, परमात्मा ने अपने ज्ञान और शक्ति को लेकर खेलने की इच्छा की। उसी परमात्मीय इच्छा-शक्ति ने समस्त जगत् की रचना की है। हम लोग जितनी इच्छायें किया करते हैं, वे सब उसी इच्छा-शक्ति से निकलती हैं और उसी में लय

होती है। अतएव कर्त्री इच्छा-शक्ति है। लोग कहते भी हैं कि—'यह भगवान की इच्छा से हुआ!' यह बात कोई नहीं कहता कि अमुक काम भगवान ने किया। यही कहा जाता है कि भगवान की इच्छा से हुआ। अगर यह कहा जाय कि अमुक घटना भगवान ने की तो वह गलत है, क्योंकि भगवान द्रष्टा हैं, कर्त्ता नहीं। कर्त्ता इच्छारूपी परमात्मा है। परमात्मा निराकार है और इच्छा-शक्ति साकार है। भगवान् भी शक्ति को लेकर ही साकार हैं। इच्छा-शक्ति ने जो जगत का चित्र बनाया है, उसी में माया, महामाया तथा योगमाया का विवरण मौजूद है।

## योगमाया की परिभाषा

भगवान की इच्छा-शक्ति के द्वारा बनाये हुए जगत् में जो व्यापक शक्ति वर्तमान रहती है, उसको योगमाया कहते हैं। योगमाया नक्शा है, योगमाया ही साकारता और प्रत्येक आकार की महिमा है। योगमाया रूपी मकान के भीतर, माया एवं महामाया का निवास है। योगमाया की क्षमता, माया और महामाया की क्षमता से कहीं अधिक है। माया और महामाया का संचालन योगमाया करती है और योगमाया का संचालन इच्छा-शक्ति करती है। इच्छा-शक्ति को इंजिन का ड्राइवर मानना चाहिए। समूचा इंजिन बतौर योगमाया मानना चाहिए। ठीक समय पर सूर्य निकलता है। केवल बारह घण्टे के लिए सूर्य निकलता है। सूर्य का निकालना और छिपाना योगमाया के हाथ में है। योगमाया चाहे तो महीने भर तक रात ही बनी रहे। वह चाहे तो छः महीने की रात कर दे। वह चाहे तो छः महीने तक सूर्यदेव तपते ही रहें। वह चाहे तो जयद्रथ वाला सूर्य कर दे। है भी और नहीं भी। सूर्य नहीं—सृष्टि के प्रत्येक परमाणु पर योगमाया का परिपूर्ण अधिकार है। सूर्य से केवल उपमा दी गई है। समस्त आध्यात्मिक और भौगोलिक परिवर्तन योगमाया के द्वारा ही होते हैं। परन्तु स्वयं योगमाया कुछ नहीं करती। वह इच्छा-शक्तिके द्वारा आज्ञा पाकर आज्ञानुसार काम करती है। संसार का प्रत्येक अवतार इस इच्छा-शक्ति का ही अवतार है। इसी कारण योगमाया भी अवतार के अधीन रहती हैं। योगमाया पर केवल इच्छा-शक्ति का शासन रहता है। इच्छा-शक्ति का जो शासन माया तथा महामाया पर चालू होता है वह योगमाया के द्वारा ही संचालिता किया जाता है।

## महामाया की परिभाषा

जगत् के दो विभाग हैं- (१) त्रिगुण और (२) त्रिगुणातीत। जगत को आदमी जैसा एक साकार मान लीजिये। छाती से पैर तक त्रिगुण है, यानी माया का अधिकार क्षेत्र है और छाती से चोटी तक महामाया का अधिकार क्षेत्र है। उसे त्रिगुणातीत कहते हैं।

विराट् के अन्दर महामाया एवं माया—दोनों के स्थान हैं। अधोगति के भाग की व्यवस्थापिका माया है और ऊपरी भाग की मैनेजर महामाया है। निरंजन चक्र यानी सहस्रदल-कमल से लेकर—अथाह मण्डल तक की निगरानी महामाया करती है। इसके अलावा—विवाह का काम महामाया अपने हाथ में रखती है। अर्द्धाङ्ग-जीवनरूपी विवाह का भेद महामाया ही छिपाये हुए है। जीवन-मरण का कारण महामाया ही है।

## माया की परिभाषा

सत्, रज और तम नामक तीनों गुणों में खेलने वाली शक्ति को माया कहते हैं। पञ्च-तत्त्व और तीन गुण—इन आठ चीजों का जो जगत् है, उसकी व्यवस्थापिका माया है। पाताल से लेकर सहस्रदल-कमल तक जो सृष्टि है, उसकी स्वामिनी माया है। महामाया के आधे जगत् में जो सृष्टि है, उसमें न तो स्थूल पञ्चतत्त्व शामिल है और न स्थूल तीन गुण ही।

## निष्कर्ष

उपमा के तौर पर यों समझना चाहिए कि मकान की बनाने वाली रचनारूपी मकान की कर्त्री—इच्छा-शक्ति है। गोया इच्छा-शक्ति ही रचना के मकान की मालिक है।

मकान ही योगमाया है। उस मकान में एक माता और एक पुत्री रहती है। माता महामाया है और पुत्री माया है। माया के काम में महामाया दखल दे सकती है, परन्तु महामाया के काम में माया दखल नहीं दे सकती। महामाया के कितने ही भेदों को माया जानती भी नहीं है। अतः माया की अफसर महामाया है, परन्तु दोनों के स्थान और दोनों के काम अलग-अलग हैं।

माया और महामाया पर योगमाया का शासन है। परिवर्तनों की सूचना, नये आर्डर और विचित्र घटनायें, योगमाया के द्वारा महामाया और माया पर प्रकट होती हैं। परन्तु योगमाया की अफसर इच्छा-शक्ति है।

इच्छा-शक्ति—जगत् को बनाने वाली और जगत् का संचालन करने वाली महाशक्ति। दुःखान्तक तथा सुखान्तक दो नाटकों द्वारा जगत में ईश्वरीय तमाशा करने वाली महादेवी। जगत के प्रथम प्रभात से दुःखान्तक नाटक शुरू किया गया, फिर सुखान्तक नाटक शुरू होगा। दोनों खेलों के विधि-विधान की जिम्मेवारी तथा जवाबदेही, इच्छा-शक्ति पर है। इच्छा-शक्ति का आर्डर योगमाया पर उतरता है। वह महामाया तथा माया पर सीधा हुक्म जारी नहीं करती, क्योंकि इच्छा-शक्ति का सम्बन्ध केवल योगमाया से है।

योगमाया—हिरण्यगर्भ में समारता, विभिन्नता तथा प्रत्येक आकार का महत्त्व योग

माया प्रदर्शित करती है। उस घेरे का नाम हिरण्यगर्भ है, जिसमें योगमाया फैली हुई रहती है। योगमाया अपने ऊपर के आर्डरों की तामील महामाया तथा माया—दोनों पर करती रहती है। आर्डर की तामील पर योगमाया गौर भी रखती है। ऐसा नहीं है कि योगमाया महामाया को आर्डर दे और महामाया माया को दे। दोनों से योगमाया का अलग-अलग सम्बन्ध रहता है। चूँकि महामाया और माया के दो विभिन्न जगत् हैं, इसलिए एक दूसरे से कोई खास लगाव नहीं है।

महामाया—वह परा विद्या वाले ऊर्ध्व जगत की व्यवस्थापिका है। सिद्धों और देवताओं पर महामाया का राज्य है। महामाया अपना अफसर योगमाया को मानती है। वह यह नहीं जानती कि योगमाया स्वतन्त्र नहीं है और वह इच्छा-शक्ति के द्वारा परिचालित है। महामाया का इच्छा-शक्ति से कोई परिचय नहीं है। विवाह और जीवन-मरण की समस्या महामाया के हाथ में रहती है। इन तीनों के गुप्त भेदों से वह किसी को भी जानकार नहीं होने देती।

माया—पञ्चतत्त्व और त्रिगुण पर राज्य करती है। मनुष्य, पशु और पक्षी आदि सभी जीवों पर उसका शासन है। वह अपरा जगत् की स्वामिनी है।

यही इन चारों मायाओं की वास्तविक परिभाषा है।

## 卐 गुण ग्राहकता 卐

अगर तुम अपने पड़ौस की सारी गन्दगी बटोर कर अपने घर में ले आओ तो विचारो तुम्हारी क्या दशा होगी, लेकिन इसके प्रतिकूल यदि तुम अपने पड़ौस से सुगन्ध अपने घर में बटोर कर ले आओ तो निश्चय ही तुम्हारा सारा घर सुगन्ध से भर जावेगा। अतएव तुम दूसरों के दुर्गुण और दोषों को न देखकर उनके सद्गुण और अच्छाइयों का अनुकरण करो। सन्त कबीर ने इसीलिए कहा है—

गुणिया तो गुण ही गहे, निर्गुणिरा गुणहि घिनीय।
बैलहि दीजे जायफर, क्या बूझे क्या खाय॥

× × × ×

सदाचार अमृत है तो दुराचार हलाहल।
सदाचार जीवन है तो दुराचार मृत्यु।
सदाचार प्रकाश है तो दुराचार घोर अन्धता।

सद्गुरुदेव के प्रति—

# ॐ नाथ सिद्धों की वाणियां

ॐ श्री कृष्णकुमार पाण्डेय

एकबार नाथ सिद्धों का समुदाय एकत्र होकर सद्गुरु तत्त्व पर विचार कर रहा था कि महासिद्ध श्री गजकन्थडी नाथ जी ने एक प्रश्न पूछा—

स्वामिन् ! यह गोरख कौन है तथा इससे जुड़ा नाथ क्या है ? यह किस तत्त्व को धारण किये हैं ? यह किस हथियार में "आश-पाश" को काटता है ?

इस पर सिद्धोंके सरताज महासिद्ध मत्स्येन्द्र-नाथ के शिष्य सिद्ध गोरखनाथ जी कहते हैं— अवधूत ! इस शरीर में अवस्थित मन ही गोरख है। इसमें विद्यमान पवन इसका नाथ है। यह पांच तत्वों के पुतले इस शरीर के माध्यम से रमण कर रहा है। 'आश-पाश' ज्ञान के खड्ग से काट दिया गया है। अब क्रमशः सिद्धों की मण्डली सद्गुरु तत्व का विश्लेषण कर बताते हैं।

सिद्ध श्री अजयपाल नाथ जी—

मुण्डे-मुण्डे भेष वितुण्डे ना बूझी सतगुरु बाणी।
सुनि-सुनि करि भूले पसुवा आपा सुध न जाणी॥
—सबदी

अर्थात् इस शरीर पर गेरुवा वस्त्र धारण कर साधु का वेष बनाने से कोई अर्थ नहीं बनता है। सार तत्व तो सद्गुरु की वाणी को ठीक से समझना है क्योंकि उस तत्व को समझे बिना तथा स्वयं को पहचाने बिना ( आत्म-ज्ञान प्राप्ति के बिना ) शून्यवाद में भटकने वाले तो निरे अज्ञानी ही हैं।

सिद्ध श्री चरपटनाथ जी—

मान अभिमान लादें फिरें,
गुरु न षोजें मुरिख मरें।
दण्ड कमण्डल भगवा वेस,
पाथर पूजा बहु उपदेश॥
—सबदी

अर्थात् भगवा वेष बनाये, दण्ड कमण्डल धारण किये मान और अभिमान का बोझा ढोते हुए लोगों को बहुत उपदेश देने वाले पाषाण पूजक अपने अज्ञानांधकार को दूर करने के लिए सद्गुरु की खोज नहीं करते और मूर्खता में ही भटकते हुए जाते हैं।

सिद्ध श्री गोपीचन्द नाथ जी—

गोपीचन्द कहै स्वामी बस्ती।
जंगलि रहूं भूष सन्तापै॥
आसणि रहै तो व्यापै माया।
पंथ चलूं तो छीजै काया॥

मीठा खाऊँ तो व्यापै रोग ।
कहो किस पर साधूँ जोग ॥
—सबदी

अर्थात् हे गुरुदेव ! अगर मैं नगर में बसता हूँ तो मन में काम वासना उत्पन्न होती है, अगर जंगल में रहता हूँ तो भूख सताती है, आसन लगाकर बैठूँ (मठ बनाकर रहूँ) तो माया व्याप्त हो जाती है। मात्र चलता ही चला जाऊँ कहीं विश्राम न लूँ तब शरीर सूख जाता है। यदि भोजन में मीठे पदार्थों का सेवन करूँ तो रोग आ घेरते हैं। हे प्रभो आप ही बतावें योग मार्ग को कैसे सिद्ध करूँ। सद्गुरु सिद्ध श्री जालन्धरनाथ जी कहते हैं—

अवधूत संजमि अहार कंद्रप नहीं व्यापै ।
वाई आरम्भ क्षुधा न सन्तापै ॥
सिद्ध आसण नहि लागै माया ।
नाद पयाणै न छीजै काया ॥
जिह्वा स्वाद न कीजै भोग ।
मन पवन से साधो जोग ॥

हे अवधूत सन्तुलित आहार करने से कामदेव नहीं सतायेगा प्राणायाम द्वारा योग-साधन में क्षुधा नहीं पीड़ित करेगा। सिद्ध स्थान पर बैठने से माया नहीं व्याप्त होगी। अनहत नाद की पहचान होने से शरीर नहीं सूखेगा। जीभ के आस्वाद के लिए भोजन ग्रहण नहीं करना। इस प्रकार इन उपायों के साथ प्राणायाम से मन को वशमें करके योग साधन करो।

महासिद्ध श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी—

अम्हारा वचन तुम्हें दिढ करि धरिबा ।
काम, क्रोध, दुःख मन न थोइबा ॥
ये भव नदी तुम्ह जे तिरवा ।
तिसी पिंडरा होइ मोष्य मुक्ति ॥
आपणा रे दुष जाण वोम पर दूष ।

हे अवधूत ! तुम हमारे वचन को निश्चयपूर्वक दृढ़ता से धारण करो। काम, क्रोध दुःख (ईर्ष्या) को अपने मन में स्थान मत दो। इससे तुम इस भव नदी को सहज ही पार कर जाओगे और जब तुम दूसरों के दुःख को मान कर उनके निवारण के लिए प्रयत्नशील होओगे तब तुम्हारे लिए इसी शरीर से मोक्ष पा सकना भी सम्भव होगा।

सिद्ध श्री गोरक्षनाथ जी—

अलष विनाणी दोई दीपक
रचि लै तीन भवन इक जोती।
तास विचार न त्रिभुव सूझै
चुणिल्यो माणिक मोती ॥

अर्थात् अलक्ष्य परब्रह्म ने दो दीपक (व्यक्त तथा अव्यक्त स्वरूप सविकल्प एवं निर्विकल्प समाधि) की रचना की है। उन दोनों दीपकों में अलक्ष्य का ही प्रकाश है। उसी एक ज्योति से तीनों लोक व्याप्त हैं। उस ज्योति पर विचार करने से तीनों लोक सूझने लगते हैं तथा त्रैलोक्य दर्शिता आती है और हंस स्वरूप आत्मा ज्ञान-रूप मोतियों को चुगने लगता है

तथा उसे माणिक्य रूप कैवल्यानुभूति प्राप्त हो जाती है। सिद्ध श्री भर्तृहरिनाथ जी—

सिधो इहां कोई दूजा नाहीं।
ग्यान दिष्टि का देषण लागा॥
हरि है सब घट माहिं।
जल-थल माहीं जीव-जन्तु है॥
इन पर दया विचारो।
सब घट व्यापक एक ब्रह्म है।
काहू कू जिन मारो॥

हे सिद्धजनों! सम्पूर्ण संसार में मात्र एक परब्रह्म परमेश्वर व्याप्त है, जब मैंने ज्ञान-दृष्टि से देखा तो यह पाया कि यहां पर सभी शरीर धारियों में एक मात्र प्रभु का निवास है। जल और थल में अनन्त जीव-जन्तु रहते हैं सब पर दया करनी चाहिए। जब यह बात सत्य है कि सभी शरीर धारियों में एक ही ब्रह्म व्यापक है तब किसी भी जीव का वध कैसे कर सकते हो।

चमड़ी दमड़ी ममड़ी
तीनी वस्तु त्यागी।
सति-सति भाषत जोषत योगी
भरथरी तो नाई रता विरागी॥

अर्थात् जिस व्यक्ति ने चमड़ (कामिनी) दमड़ी (कंचन) ममड़ी (ममता) इन तीनों का त्याग कर दिया, वे राग-युक्त नहीं अपितु वैराग्यवान ही माने जायेंगे यह सत्य है।

सिद्ध मुसुकाई नाथ जी—

जई तुज्झे मुसुक अहेई जाइबे मारि हंसि-
पंच जना।
नलिनी वन पइसंते होइसि एकुमणा॥
जीवंते भेला विहाण मएलर अणि।
हण-विणु मासे मुसुक पद्मवन पइसहिणि॥
मायाजाल पसरिउ अरे बाधेलि माआ-
हरिणी।
सद्गुरु बोहे बूझि रे कासू कहिनि॥
विरमानन्द विलक्षण सूधी।
जो एथु बूझई सो एथु बुध॥
मुसुक भणई मइ बूझि अमेले।
सहजानन्द महा सुख लेले॥

सिद्ध मुसुकजी बताते हैं—यदि काम आदि पंचजन तुझे मारने पर ही तुले हुए हैं, तो तू कमल-वन में यानी प्रज्ञा की सप्त भूमिका में प्रवेश करके क्यों नहीं एक मन वाले हो जाते और शान्ति प्राप्त कर लेता? जीते-जी विहान (सवेरा) हुआ रजनी मर गई। नादानुसन्धान करते-करते ऋतम्भरा प्रज्ञा प्रकट हुई, काम शुद्धि के लिए मुक्त त्रिवेणी में क्यों नहीं उतर पड़ता। ब्रह्मा, विष्णु, शिव की बांधी हुई ग्रन्थि को खोलने का यही समय है। बिना विमोचन के तू हाड़-मांस से रहित कैसे हो सकेगा? और कैसे सूक्ष्मातिसूक्ष्म होकर कमल-वन में प्रवेश कर सकेगा? मधुमती भूमि में ही प्रज्ञा-पारमिता का वास है, जहां

से योग-माया का जाल फैला हुआ है। वह देख ! (कुण्डलिनी रूपी) माया हरिणी बँधी हुई है। मुसुक जी का कथन है कि इन सब बातों का बोध तो मात्र सद्गुरु भगवान ही करा सकते हैं। व्यर्थ में अन्य किस-किससे पूछें ? ब्रह्मानन्द अवश्य ही एक विलक्षण सुख है, जो इसे सद्गुरु की सहायता से समझ जाता है, वही ज्ञानवान है। मुसुक—मैंने मैंने सबसे मिलकर समझ-बूझ लिया है। तू सहजानन्द रूपी महासुख सद्गुरु के सानिध्य में क्यों नहीं प्राप्त करता है।

सिद्ध मीडकनाथ जी—

माया कंचन मन कस्तूरो,
सो ले सद्गुरु को दीजं।
अखण्ड मण्डल मंढ़ी छाइवा,
जरा मरण नहि छीजं॥

अर्थात् कंचन-सी काया और कस्तूरी रूपी मन को श्री सद्गुरुदेव जी के श्री चरणों में अर्पित कर देना चाहिए। इससे सद्गुरु पर-ब्रह्म परमात्मा से मिलन होने पर आपका स्थान अखण्ड आकाश मण्डल में ही बन जायेगा, जिससे बुढ़ापा और मृत्यु कभी नहीं सतायेंगे।

सिद्ध शवरनाथ जी—

सद्गुरु वाक् पञ्ज,
आधनुकि अमण वाणे।
केशर सन्धाने विन्धह-
बिन्धहु परमणि वाणे॥
उमत सवरो गुरु,
आरोपे गिरवर।
सिहरे संधी पइसंते सबरो,
लोडिब कइसे सवपिद॥

हे सिद्धो! श्री सद्गुरुदेव जी भगवान का वाक्य पंजु धनुष है, उसमें अपने मन-रूपी वाणी का एकचित्त होकर सन्धान करने पर ही रम्य निर्वाण पद प्राप्त होगा। उन्मत्त शवर ने श्री सद्गुरुदेव जी की कृपा से ऐसे बाण का सन्धान किया और वह गिरवर शिखर सहस्रार दल पर आधारित ब्रह्म को लग गया। अब उसको फेरे बाण को लौटा-पाना शवर के लिए कैसे सम्भव है? अब तो ब्रह्मरन्ध्र में अधिष्ठित ब्रह्म से ही जीवात्मा का मिलन होने से ब्रह्म प्राप्ति निश्चत ही है।

— ॐ —

---

**रा**म में रमे थे सदा, राम में रमे ही रहे।
**म**न्त्र रूप देव प्रभो! आज भी विराजते॥
**ला**ख - लाख भक्तों के, काज साधते हैं नित्य।
**ल**क्ष्य एक मात्र, आर्त, दीन को निहारते॥

—कवि-भूषण पं० जगदीशशरण बिलगइयाँ 'मधुप'

# भूल गया मैं तो......

श्री श्यामबिहारी 'श्याम', दतिया

भूल गया मैं तो सब कुछ हूँ,
आँगन की फुलवारी में ।
कभी महकते कभी सिसकते,
देखे हैं इस क्यारी में ॥

बन्दीग्रह में नाम पुकारूँ,
रोज तुम्हारी बाट निहारूँ ।
चिल्लाकर कहता है राम !,
मौन रटा उसका पैगाम ॥

अँधियारी में चैन नहीं है,
भेजो उस उजियारी में ।
कभी महकते कभी सिसकते,
देखे हैं उस क्यारी में ॥

हवा लगे अब मुझे छोड़ दो,
पाँवों की जंजीर तोड़ दो ।
चाहे जिसकी शपथ आज लो,
जैसे चाहो आज मांज लो ॥

कल पर नहीं छोड़ना कुछ भी,
शेष न हो तैयारी में ।
कभी महकते कभी सिसकते,
देखे हैं उस क्यारी में ॥

# साधकों के प्रश्न तथा उनके उत्तर

(श्री सद्‌गुरुदेव जी द्वारा)

## योगी की सर्वज्ञातृत्व शक्ति

प्रश्न—हे गुरुदेव ! मैंने कई बार सत्संग में यह सुना है कि योगी के अन्दर ऐसी शक्ति आ जाती है कि वह जो भी कुछ जानना चाहता है, संकल्प मात्र से जान लिया करता है। क्या यह बात बिल्कुल सत्य ? मैंने तो अभी तक यही सुना था कि केवल मात्र ईश्वर ही सर्व शक्तिमान् सर्वज्ञ है, फिर आपके सत्संगों में यह भी सुना है कि योगी के मन के अन्दर सर्वज्ञता के ज्ञान का उदय हो जाता है। क्या यह बात ठीक है ?

उत्तर – अपने बच्चे की पवित्र भावनाओं देखकर श्री गुरुदेव जी ने उत्तर दिया कि—हे पुत्र ! तुम्हारा यह प्रश्न बिल्कुल ठीक है, इसमें कोई भी शंका की बात नहीं कि सर्वज्ञ बीज की पराकाष्ठा ईश्वर में ही है और उससे बढ़कर कोई और सर्वज्ञ नहीं होता। किन्तु उस ईश्वर में लयता प्राप्त करने वाले योगी भी अवश्य सर्वज्ञातृत्व शक्तिको पा लिया करते पातंजल योग-दर्शन में भगवान पतंजलिदेव जी ने ईश्वर में निरतिशय सर्वज्ञ बीज की पराकाष्ठा का वर्णन किया है। यह प्रसङ्ग इस प्रकार से है—

**तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्**

इस पर व्यास भाष्य—

यदिदमतीतानागतम् प्रत्युत्पन्नं प्रत्येक-समुच्चयातीन्द्रियग्रहणमल्पं बह्विति सर्वज्ञ बीजम्, एतद्विवर्द्धमानं यत्र निरतिशयं स सर्वज्ञः अस्ति काष्ठाप्राप्तिः सर्वज्ञ-बीजस्य सातिशयत्वात् परिमाणवदिति, यत्र काष्ठाप्राप्तिर्ज्ञानस्य स सर्वज्ञः स च पुरुषविशेष इति, सामान्यमात्रोपसंहारे कृतोपक्षयमनुमानं न विशेषप्रतिपत्तौ समर्थमिति, तस्य संज्ञादिविशेषप्रति-पत्तिरागमतः पर्य्यन्वेष्या। तस्यात्मा-नुग्रहाभावेऽपि भूतानुग्रहः प्रयोजनम् ज्ञानधर्मोपदेशेन कल्पप्रलयमहाप्रलयेषु संसारिणः पुरुषानुद्धरिष्यामीति। तथा चोक्तं आदिविद्वाननिर्माणचित्तमधिष्ठाय कारुण्याद् भगवान् परमर्षिरासुरये जिज्ञासमानाय तन्त्रं प्रोवाच।

अर्थात् अतीत, अनागत एवं प्रत्युत्पन्न प्रत्येक समुच्च अतीन्द्रिय ज्ञान सर्वज्ञबीज कहलाता है और यह बढ़ता हुआ जहां पराकाष्ठा को पहुँच जाता है वही सर्वज्ञ कहलाता है। सर्वज्ञ बीज का अतिशयाक्रान्त होने से पुरुष विशेष ईश्वर सर्वज्ञ कहलाता है। क्योंकि अनुमान जो है सामान्य अर्थ का प्रतिपादक होता है, विशेष प्रतिपत्ति में समर्थ नहीं होता है। विशेष प्रतिपत्ति वेदों से ही जाननी चाहिए। ईश्वर का संसार के कार्यों में अपना कोई प्रयोजन नहीं है। भूतानुग्रह ही ईश्वर का प्रयोजन है। क्योंकि ईश्वर यह चाहता है कि मैं ज्ञान धर्मोपदेश के द्वारा कल्प एवं महाप्रलयादि में भी संसारी मनुष्यों का उद्धार करूँगा, पुरुषों का उद्धार करूँगा। इसीलिये कहा गया है कि आदि विद्वान, आदि गुरु परमेश्वर हिरण्यगर्भ ने निर्माण चित्त का आश्रय लेकर जिज्ञासु आसुरी को तन्त्र का उपदेश किया। इसीलिये हे पुत्र! ईश्वर परम सर्वज्ञ है, किन्तु उनका ध्यान करने वाले योगी जन भी समाधि बल से सर्वज्ञ बन जाते हैं। यही योग-विद्या की बहुत बड़ी महानता है।

प्रश्न—आचार्य तपोनिधि जी के उपदेश को सुनकर उनके जिज्ञासु बालक ने प्रश्न किया कि हे प्रभो! यह तो ठीक है कि योग-विद्या परम महान है, किन्तु मैं तो योग के सही अर्थ को भी वस्तुतः नहीं समझता हूं कि योग है क्या? इसका उपदेश मुझे कृपा कर करिये और समाधि किसको कहते हैं, इसके कितने भेद होते हैं? उसका सब भेद कृपा कर मुझे समझाइये ताकि मैं भी योग-समाधि का अधिकारी बन जाऊँ।

उत्तर—हे पुत्र! सुनो, हम तुम्हें समझाते हैं कि योग किसे कहते हैं और समाधि का क्या अर्थ है एवं उसके कितने भेद हैं? और चित्त की कौनसी भूमिका में योग की वर्णाक्षरी प्रारम्भ होती है? यह सभी कुछ अब आगे के उपदेश में तुम्हें समझाते हैं। सुनो—योग शब्द का अर्थ इतना व्यापक एवं महत्वशाली है कि सभी सिद्धान्तवादियों ने उसको अपने हृदय से अपनाया है।

भक्तियोग, ज्ञानयोग, राजयोग, कर्मयोग, लययोग, हठयोग, शून्ययोग आदि-आदि ये सभी शब्द इसकी व्यापकता के परिचायक हैं। इस संसार में जन्म लेने वाला प्राणी कोई भी ऐसा नहीं होगा, जिसको योग की सच्ची जिज्ञासा न हो, किन्तु 'मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना' के अनुसार हर एक व्यक्ति ने इसको अपनी मति के अनुसार प्रयोग किया। जो लोग हृदय प्रधान हैं और ईश्वर की अर्चना, वन्दना आदि के रूप में लक्ष्य प्राप्ति के लिए संलग्न हैं, उन्होंने इसको भक्तियोग तथा जो लोग ज्ञान-निष्ठा प्रधान हैं, वे महावाक्यों का मनन करते हुए भी वेदान्त सिद्धान्तों के अनुसार

आत्म-साक्षात्कार के लिए प्रयत्नशील हैं। उन्होंने ज्ञानयोग से, इसी प्रकार जो ईश्वरार्पित बुद्धि से निष्काम भाव से कर्म करते हुए कर्म-बन्धन से छूटकर अपने लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते हैं, उन्होंने इसे कर्मयोग के नाम से अपनाया है।

इसके अतिरिक्त योग के व्यापक प्रभाव और महानता को देखकर कुछ दम्भी लोगों ने भी इस शब्द को अपनाकर यक्षिणी पिशाचिनी आदि छोटी-छोटी तामस, राजस शक्तियों की आराधना कर सिद्धियों को पाकर संसार के भोले-भाले व्यक्तियों को चमत्कार में डालकर अपनी दाम्भिक पूजा कराई और अपने को योगी सिद्ध किया। इसके अतिरिक्त जिन्होंने हर एक योग के कुछ साधनों को कहीं से सीख लिया, उन्होंने योगाश्रम कायम कर लिये और केवलमात्र नेति-धौति आदि षटकर्म व आसन बन्ध-मुद्राओं के द्वारा शारीरिक साधनायें ही इन लोगों का परम लक्ष्य बन गया। इसी प्रकार से बिना अष्टांग योग की की साधना के ही किन्हीं लोगों ने भू-गर्भ, जल-गर्भ आदि समाधियां लगाकर योग के व्यापक शब्द से लाभ उठाया। यह सब योग का वास्तविक अर्थ न समझकर ही उसकी लापरवाही के कारण हुआ।

वस्तुतः ठीक प्रकार से विचार कर देखा जाय तो योग शब्द का अर्थ है मिलाने वाली क्रिया। पाणिनीय व्याकरण के अनुसार युज् धातु से सन्धानार्थ शब्द का प्रयोग होता है, जिसका अर्थ है मिलना। "युज् समाधौ" से योग का अर्थ है 'समाधि'। योगाचार्य भगवान श्री पतंजलि जी ने "योगश्चित्तवृत्ति निरोधः" कहकर योग शब्द की अभिव्यक्ति की। निरोध शब्द का अर्थ है हमारी शास्त्रीय परिभाषा में निरोधः समाधि से व इसी प्रकार योग शब्द का अर्थ योग, समाधि आदि वचनों से समाधि ही सिद्ध होता है। समाधि शब्द का अर्थ उपनिषदों में "समाधि समतावस्था जीवात्मः परमात्मनः" से जीवात्मा व परमात्मा की समतावस्था का नाम ही है। किन्तु "योगश्चित्तवृत्ति निरोधः' इस सूत्रसे केवलमात्र चित्त वृत्ति निरोध को योग कहा है। न कि "सर्व चित्तवृत्ति निरोधः" को योग कहा है। क्योंकि इस सूत्र में सर्व शब्द का ग्रहण नहीं है। इसलिए योग की सम्प्रज्ञात व असम्प्रज्ञात दोनों अवस्थाओं का नाम योग शब्द वाच्य है। इसी कारण से "वितर्क विचारानन्दास्मितानुगमात् सम्प्रज्ञातः" कहकर सम्प्रज्ञात योग व "विराम प्रत्ययाभ्यास पूर्वः संस्कारशेषोन्य" कहकर असम्प्रज्ञात योग का कथन किया गया है। सम्प्रज्ञात समाधि को दूसरे शब्दों में एकाग्रावस्था व निरोधावस्था कहना चाहिए। सारे संसार के प्राणियों के चित्त पांच अवस्थाओं में रहा करते हैं—

### (१) मूढ़ावस्था के प्राणी—

जिनमें तमोगुण प्रधान रहता है तथा रज और सत्वगुण हो जाया करते हैं। इस अवस्था के चित्त वालों की प्रवृत्ति काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि से आवृत्त रहा करती है और जो आलस-तन्द्रा में घिरे रहते हैं, किसी भी प्रकार उनकी उदर-पूर्ति होती रहे, इसके अतिरिक्त किसी के हिताहित, लोक, परलोक से इनका कोई सम्बन्ध नहीं होता।

### (२) क्षिप्तावस्था के प्राणी—

जिनमें रजोगुण प्रधान रहता है। तमोगुण व सतोगुण गौण रहने के कारण इनके मन में चञ्चलता, दुःख, शोक, चिन्तायें बनी रहती हैं। लौकिक साधना ही उनका परम लक्ष्य रहता है, सांसारिक कार्य-धन्धे (बिजनिस) व्यापार के अतिरिक्त परलोक आदि में इनकी आस्था नहीं होती है।

### (३) विक्षिप्तावस्था के प्राणी—

जिनमें सतोगुण प्रधान रहता है, रजोगुण और तमोगुण गौण रहता है। इनके मन में पूर्ण प्रसन्नता, क्षमा, दया, परोपकार की भावना और साधनों में संलग्नता, ज्ञान, धर्म और वैराग्य में पूरी-पूरी अभिरुचि रहती है, इनका मन थोड़ा-थोड़ा एकाग्रता की ओर चलता है तथा शान्त रहता है। ये लोग स्वाध्याय, संकीर्तन, उपासनायें आदि करते हैं, किन्तु एकाग्रता के बिना इस भूमिका के प्राणी भी योग श्रेणी के नहीं माने जाते हैं।

### (४) एकाग्रावस्था के प्राणी—

जिनमें सतोगुण प्रधान रहता है, रजोगुण और तमोगुण वृत्ति मात्र में शेष रहते हैं। इनका मन 'दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञावैराग्यम्' होकर अपर वैराग्य को प्राप्त होता है। मनुष्य का मन बहुत बड़ा अद्भुत और शक्तिशाली है। वस्तुतः विचार कर देखा जाय तो प्रभु की सृष्टि के बड़े-बड़े अद्भुत कार्य मन की एकाग्रता से ही सम्पन्न होते हैं।

### (५) निरोधावस्था के प्राणी—

जिनमें बाहर से गुणों का परिणाम बन्द होकर चित्त-सत्व में निरोध परिणाम संस्कार मात्र से शेष रह जाता है। ऊपर वर्णन की हुई पाँचों प्रकार की अवस्थाओं में केवल मात्र एकाग्रावस्था व निरोधावस्था को ही योग-श्रेणी में लिया है। संसार का कोई भी प्राणी किसी भी प्रकार की साधनायें करता है, जब तक मन में एकाग्रता का उदय नहीं होता तब तक उसका योग में प्रवेश नहीं माना जा सकता। भगवान पतञ्जलि जी ने—

**यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहार-धारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि।**

कहकर अष्टाङ्ग योग का वर्णन किया है।

अङ्ग अङ्गी से अलग नहीं होते। इस विचार से अष्टाङ्ग योग के किसी भी एक अङ्ग का पालन करने वाला भी योग का विद्यार्थी तो है ही। उनमें से यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार ये पांच अङ्ग धारणा, ध्यान सम्प्रज्ञात समाधि, असम्प्रज्ञात समाधि, की अपेक्षा बहिरंग हैं। भगवान पतञ्जलि जी के शब्दों में किसी एक में चित्त को बांधना धारणा कहलाती है—

**देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ।**

धारणा से ही सम्प्रज्ञात योग का श्री गणेश होता है। धारणा सिद्ध हो जाने पर मन के अन्दर योग प्रवेश की योग्यता हो जाती है। धारणा की सिद्धि से प्राप्त हुई योग्यता वाला मन, जिसकी वृत्ति अन्तर्मुखी हो चुकी है, संप्रज्ञात योग का अधिकारी बनता है। सम्प्रज्ञात योग का अधिकारी व अभ्यासी योगी अपने प्रथम अभ्यास में वितर्कानुगत योग का अभ्यास करता है। जिसमें वह आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी इन पांच महाभूतों का तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इनके गुणों को प्रत्यक्ष करता है। इस वितर्कानुगत योग में पंचभूत और पंचभूतों से होने वाले सब विस्तार का और इनके सब विषयों को पूर्ण प्रत्यक्ष करता हुआ साधक अपने अभ्यास में पृथ्वी तत्त्व में सुरम्य वन, उपवन और नाना प्रकार की दिव्य सुगन्धों को अनुभव करता है। जल तत्त्व में महान नाना प्रकार के समुद्र एवं दिव्य-रसों का अनुभव करता है। अग्नि तत्त्व में अनेक विधि ज्वालाओं और महान दिव्य रूपों का अनुभव करता है। वायु तत्त्व में दिव्य स्पर्शों का अनुभव करता है और आकाश तत्त्व में शून्य आकाश और आकाश से उत्पन्न होने वाले नाना प्रकार के शब्दों को सुनता है। इस वितर्कानुगत योग में सवितर्क और निर्वितर्क दो अलग-अलग भेद हैं। सवितर्क समाधि—

**तत्र शब्दार्थ ज्ञान विकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः ।**

अर्थात् वितर्कानुगत समाधि में शब्द, अर्थ और उसका ज्ञान मिला हुआ सा होने पर बराबर अलग-अलग भावित होते रहें, वह सवितर्क समाधि कहलाती है। इसका अभ्यास करते-करते चित्त ध्येयाकार हो जाये। शब्द, अर्थ, ज्ञान न रहे तब तक निर्वितर्क समाधि कहलाती है। इस विषय को इस प्रकार समझ लेना चाहिए—

जैसे साधक के ध्यान में एक गाय है और लम्बे गले वाली, दो सींगों वाली, सफेद रंग, चार पैरों वाली गाय एक पशु है और उस गाय का मन में ज्ञान होना कि वह एक गाय है, यही ज्ञान है। ये तीनों शब्द, अर्थ और ज्ञान एक विषयक होते हुये भी अलग-अलग समझ में आते रहें। ऐसी स्थिति का नाम सवितर्क समाधि है।

जिसमें साधक का मन ध्येयाकार बन जाय, शब्द, अर्थ और ज्ञान अलग-अलग अनुभव में न आकर अर्थमात्र ही भाषित होता रहे, वह निर्वितर्क समाधि है।

**स्मृति परिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमात्र-निर्भासा निर्वितर्का ।**

## विचारानुगत योग—

निर्वितर्क समाधि की पराकाष्ठा में पहुँच जाने के बाद मनुष्य का मन सूक्ष्म विषयों में प्रवेश करता है। अभी तक वितर्कानुगत योग में उसने स्थूल महाभूतों का और उनके विषयों को प्रत्यक्ष किया था, किन्तु अब विचारानुगत योग में महाभूतों की अपेक्षा उनसे सूक्ष्म तन्मात्र का प्रत्यक्ष करना है। जैसे वितर्कानुगत समाधि में स्थूल महाभूत आकाश व उसके गुण शब्द का अनुभव किया था। अब विचारानुगत योग में सूक्ष्म आकाश या शब्द तन्मात्र का अनुभव करेगा। इसी प्रकार वायु में सूक्ष्म वायु तत्व यानी स्पर्श तन्मात्र, अग्नि में सूक्ष्म अग्नि तत्व या रूप तन्मात्र, जल में सूक्ष्म जल तत्व या रस तन्मात्र, पृथ्वी में सूक्ष्म पृथ्वीतत्व या गंध तन्मात्र का अनुभव करेगा। इसके साथ-साथ दस इन्द्रियों—मन, बुद्धि, अहंकार को प्रत्यक्ष करेगा। इसी प्रकार इन सूक्ष्म विषयों में होने वाली समाधि का नाम सविचार समाधि है। जिस प्रकार वितर्कानुगत समाधि के सवितर्क और निर्वितर्क के दो भेद हैं। इसी प्रकार विचारानुगत समाधि में सविचार और निर्विचार दो भेद हैं। सूक्ष्म विषय की सीमा प्रधान अलिंग तक है।

**सूक्ष्म विषयत्वचालिङ्ग पर्यवसानम् ।**

जैसे हमने किसी भी तन्मात्र का सूक्ष्म ध्यान आरम्भ किया। उसका अनुभव, देश, काल व निमित्त से सीमित अनुभव होता रहे व ध्याता, ध्यान और ध्येय तीनों अलग-अलग भाषित होते रहें, इसका नाम सविचार समाधि है। जिस समाधि में ध्येय विषय, देश काल निमित्त से सीमित न दिखलाई दे तो वह निर्विचार समाधि कहलायेगी। इस विचारानुगत योग में मनुष्य प्रकृति के सूक्ष्म से सूक्ष्म अवयवों को पूर्ण प्रत्यक्ष कर लेता है तथा सूक्ष्मता की परिधि को पहुँच जाता है, क्योंकि योगी इसमें सूक्ष्म मन का, सूक्ष्म इन्द्रियों का, सूक्ष्म बुद्धि और अहंकार का पूर्ण प्रत्यक्ष कर लेता है। इसलिए इसमें दैविक शक्तियों का विकास हो जाता है। इस स्थिति के योगी को दूर-दर्शन, दूर-श्रवण, दूर-स्पर्श आदि स्वतः ही होने लगता है। इसके साथ-साथ सूक्ष्मदेव लोकादि भी अनुभव में आने लगते हैं और उन सब मायिक स्थानीय देवताओं को देखकर भी योगी अपने आपको इन सबसे उत्कृष्ट देखता है। बुद्धि के आमोद-प्रमोद आह्लादित

# 卐 विचार-शून्यता

❀ श्री वी० बी० गुप्त, इंजीनियर, कोटा

परम पूजनीय सद्गुरुदेव जी के चरण-कमलों में प्रणाम करते हुये विचार शून्यता पर कुछ लिखना चाहता हूँ। श्री प्रभु जी की महान कृपा से जो कुछ योग के मार्ग में मुझे प्राप्त हुआ है और निरन्तर होता जा रहा है, उसका कुछ लाभ अन्य बन्धु भी उठा सके तो मैं अपना जीवन सार्थक समझूंगा।

शब्द "विचार-शून्यता" यद्यपि दो ही शब्दों को मिलाकर बना है, पर इसका अर्थ बहुत ही गहन है। इससे वह स्थिति प्राप्त हो जाती है, जिससे मस्तिष्क में विचारों का आदान-प्रदान प्रायः शून्य-सा हो जाता है यानी शून्य की स्थिति प्राप्त हो जाती है। सबसे पहले यह जानना जरूरी है कि इससे "विचार-शून्यता" के अभ्यास करने से क्या लाभ है ? और आज के भौतिक वातावरण में इसकी आवश्यकता क्या है ? मस्तिष्क यानी विचार-तन्त्र से विचारों का आने-जाने का क्रम बराबर बना रहता है और सारे सुखों और दुःखों की अनुभूतियां विचारों द्वारा

[ पिछले पृष्ठ का शेष ]

सूक्ष्म विषयों को प्रत्यक्ष करता है और अपने आपको पूरा आनन्दमय देखता है। ऐसी स्थिति में देवलोग अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करते हैं। उस समय योगी को बहुत सचेत होकर रहने की आवश्यकता है। भगवान पतंजलिदेव जी की आज्ञा है कि—

**स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्गस्मयाकरणम् पुनरनिष्टप्रसङ्गात् ।**

ये चारों प्रकार की समाधियां सबीज कहलाती हैं। यहां तक कि संसार का बीज बना रहता है।

मनुष्य संसार से परे नहीं हो पाता, इस-लिए स्थूलार्थ में सवितर्क और निर्वितर्क और सूक्ष्मार्थ में सविचार और निर्विचार समाधियां सबीज हैं। किन्तु निर्विचार समाधि ज्यों-ज्यों बढ़ती है, त्यों-त्यों उसकी स्थिति निर्मल बनती चली जाती है। पुरुष को प्रकृति-पर्यन्त सब सूक्ष्म पदार्थ शीशे की तरह चमकते हुए दिखाई देने लगते हैं, तब—

**निर्विचार वैशारद्येऽध्यात्म प्रसादः**

निर्विचार समाधि की निर्मलता में योगी को स्फुट-प्रज्ञा लोक होता है।

काफी देर के सत्संग के पश्चात् योगाचार्य श्री तपोनिधि जी ने सत्संग को विश्राम दिया और शिष्य-मण्डली को आदेश दिया कि वे लोग अपनी-अपनी कुटिया में जाकर नित्य-नैमित्यिक कर्म करते हुए अपने साधना-क्रम को चलायें। ❀❀

ही होती है। साधारणतया मनुष्य की तीन प्रवृत्तियां होती हैं—सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण जो वह दिन में कई-कई बार बदला करती है। एक प्रवृत्ति मुख्य होती है, तो शेष दो गौण हो जाती है। मनुष्य की प्रवृत्ति अगर सतोगुण या रजोगुण है, तो विचार धार्मिक, सुख देने वाले, परोपकार, सद्-कार्य के होंगे। यदि प्रवृत्ति तमोगुण है, तो विचार अधर्म, अन्याय दुःख देने वाले छल, कपट के होंगे, जो कि मनुष्य की भावनाओं को दूषित करके उसे बुरे कर्मों की ओर प्रेरित करेंगे। अतः इन पर नियन्त्रण करना बहुत आवश्यक है। विचारों के प्रवाह में अगर शान्ति हो, तो मनुष्य कोई दुःख महसूस नहीं करता। पर क्रम तेज हो, तो स्थिति इस तरह की है। जैसे वह एक तेज गति के वाहन में बैठा हो और उसका चालक अकुशल है, न जाने कहां वाहन को टकरादे। ऐसी स्थिति का शमन करना आवश्यक है, इसलिये इस स्थिति में जबकि विचारों का आदान-प्रदान विचार तन्त्र में तेज गति से हो रहा हो, विचार-शून्यता का अभ्यास जरूरी है विचार तन्त्र को Isolate तो नहीं कर सकते न उसके ऊपर नियन्त्रण किसी आसान विधि से हो सकता है, पर योग विधि द्वारा उसको नियन्त्रित किया जा सकता है। ताकि उन विचारों का शरीर पर कुप्रभाव न पड़ सके। इसके लिए अन्तःमुखी साधना का अभ्यास जरूरी है, अन्तःमुखी होते ही विचारों का प्रवाह एकदम धीमा पड़ जाता है, इसका अभ्यास इस तरीके से होना चाहिए कि दृष्टि पास की वस्तु या लिखित अक्षर पर पड़ते ही योग विधि द्वारा अन्तर्चक्षु द्वारा ब्रह्माण्ड यानी मस्तिष्क में ऊपर की ओर ध्यान लगातार खींचते जायें और ऊपर खींचते जायें तो वह भी बरफ की शिलाओं के बीच एक ठण्डक का अनुभव मस्तिष्क में लेते हुए, थोड़ी ही देर में वह वस्तु या अक्षर जिस पर दृष्टि जमाई थी एक की दो हो जायगी और बाह्य दृष्टि भी अन्तःमुखी दृष्टि से मिल जायगी। एक महान स्वर्गीय सुख का आनन्द प्राप्त होगा। बहुत आनन्द-दायक आभास होता रहेगा, जब तक ध्यान ब्रह्माण्डमें ऊपर ही ऊपर खिंचता रहेगा मनुष्य का सम्पर्क बाह्य जगत से पूर्ण रूप से टूट जायगा। कोई अनुभूति नहीं रहेगी कि कहां बैठे हैं, क्या कर रहे हैं, क्या बात है, एक दम विचार-शून्यता की स्थिति आ जायगी। इसका अभ्यास सुबह और रात्रि में शयन के समय परम प्रभुजी गुरुजी का स्मरण करके ही करना चाहिए तब ही यह फलदायक रहेगा। सद्गुरुदेव की कृपा बिना कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता है।

—※※०※※—

# 卐 ईश्वर प्रणिधान व उसका फल

※ डा० श्रीमती राज त्रिखा, नई दिल्ली

जगदात्मा श्रीकृष्ण भगवान ने गीता में कहा है कि आध्यात्मिक जगत में तपस्वी, ज्ञानी व कर्मयोगी से भी योगी का स्थान अधिक ऊँचा है। योगियों में भी वही योगी श्रेष्ठ है जो श्रद्धावान है तथा जो निरन्तर मेरा भजन करता है।

तपस्विभ्योऽधिको योगी
ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मभ्यश्चाधिको योगी
तस्माद्योगी भवार्जुन ॥
योगिनामपि सर्वेषाम्
मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान्भजते यो मां
स मे युक्ततमो मतः ॥
(अध्याय ७)

शुद्ध चित्त वाला व शुद्ध व्यवहार करने वाला जो श्रद्धालु व्यक्ति भगवान का निरन्तर भजन करता है तथा सब प्रकार से पूर्णतया ईश्वर पर ही आश्रित रहता है। ईश्वर स्वयं उसकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। प्रत्येक कार्य को ईश्वर को अर्पित कर देना तथा उसके फल की इच्छा त्याग देना ही ईश्वर-प्रणिधान कहलाता है। पतञ्जलि योग-सूत्र में ईश्वर-प्रणिधान को नियमों के अन्तर्गत गिनाया गया है। "शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।" इसी सूत्र पर व्यास भाष्य में कहा गया है—

ईश्वरप्रणिधानं तस्मिन् परमगुरौ सर्वकर्मार्पणम् ।

अर्थात् ईश्वर के प्रति सभी कार्य अर्पण करना ही ईश्वर प्रणिधान है। पतञ्जलि मुनि ने अपने योग-सूत्र में एक स्थल पर कहा है—"तपःस्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रियायोगः" तथा इस सूत्र पर भाष्यकार व्यास ने कहा है—"ईश्वर प्रणिधानं सर्वक्रियानां परमगुरावर्पणं तत्फलसंन्यासो वा।" अर्थात् कायिक, वाचिक व मानसिक सभी कर्म व उनके फल को ईश्वर के अर्पण करना ईश्वर प्रणिधान है।

साधक को जीवन में प्राप्त होने वाली प्रत्येक अवस्था को सर्वशक्तिमान ईश्वर का प्रसाद समझ कर उसी में प्रसन्न रहना चाहिए। भगवान में अनन्य भावसे श्रद्धा व भक्ति रखते हुए भक्त तो सभी कार्य अपने भगवान के लिए ही करता है। उसका खाना, पीना, सांसारिक

व्यवहार, हवन करना, तप करना, सब कुछ ईश्वर के वास्ते ही होता है। इसी सन्दर्भ में भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है—

**यत्करोषि यदश्नासि**
**यज्जुहोषि ददासि यत् ।**
**यत्तपस्यसि कौन्तेय**
**तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥**

इसी प्रसंग में आगे भगवान ने साधकों को आदेश दिया—

**मन्मना भव मद्भक्तो**
**मद्याजी मां नमस्कुरु ।**
**मामेवैष्यसि युक्त्वैव-**
**मात्मानं मत्परायणः ॥**

अर्थात् मुझमें अपना मन लगाकर मेरा भक्त बन जाओ। मेरे ही लिए यज्ञ करो व मुझे नमस्कार करो। इस प्रकार मुझी को प्राप्त हो जाओगे। ईश्वर पर पूरी तरह आश्रित रहने वाला भक्त ईश्वर को बहुत प्रिय है। शरणागत की रक्षा तो क्षुद्र से क्षुद्र प्राणी भी करता है। माता-पिता अपने छोटे बच्चों के खाने-पीने, पढ़ने-लिखने, शुभ संस्कार बढ़ाने स्वास्थ्य ठीक रखने हेतु कितना प्रयत्नशील रहते है। क्योंकि बच्चे अपने माता-पिता पर पूर्णतया आश्रित होते हैं। चिड़ियां, तोते, कुत्ते बिल्लियां तक अपने बच्चों का लालन-पालन पूरी सावधानी व प्रेमपूर्वक करते हैं। चेतन तो क्या जड़ प्रकृति भी शरणागत की रक्षा करती है ऐसा हमारी संस्कृति में जाना जाता है। पेड़ पथिक को छाया देता है। महाकवि कालिदास ने हिमालय की गुफाओं में व्याप्त अन्धकार के विषय में भी कल्पना कर डाली कि यह हिमालय शरणागत अन्धकार की सूर्य से रक्षा करता है व उसे अपनी गुफाओं में छिपा लेता है।

**दिवाकराद्रक्षति यो गुहासु**
**लीनं दिवाभीतमिवान्धकारम् ।**
**क्षुद्रेऽपि नूनं शरणं प्रपन्ने**
**ममत्वमुच्चैःशिरसां सतीव ॥**

(कुमार प्रथम सर्ग)

ये तो खैर कवि की कल्पना है, परन्तु जब संसारी क्षुद्र मानव, कीट, पतंग, पशु, पक्षी तक भी शरणागत की रक्षा करते हैं, तो फिर परमगुरु सर्व शक्तिमान उस परमेश्वर का तो कहना ही क्या? उसकी शक्ति व पहुँच दोनों ही असीम हैं। स्पष्ट है कि शरणागत का असीम कल्याण भी वही करता है। अपने भक्त की इहलौकिक हो या पारलौकिक, सभी प्रकार की छोटी-बड़ी आवश्यकताओं का भगवान ही पूरा ध्यान रखते हैं। नरसी की ईश्वर-निष्ठा व भगवान द्वारा दिया गया नरसी का भात, नरसी की हुण्डी का भगवान भक्त प्रह्लाद की प्राण-रक्षा, विषपान के बाद भी मीरा की प्राण-रक्षा आदि प्रसंगों को भला

कौन नहीं जानता ? आज भी इस दुनिया में बहुतेरे ऐसे भाग्यशाली भक्त हैं, जिनका जीवन ईश्वरार्पित रहा है व उनके सभी कार्य भगवान भरोसे आश्चर्यजनक रूप से व श्रेष्ठ ढंग से सम्पन्न होते हैं। श्री सद्गुरुदेव भगवान अपने जिन बच्चों पर कृपा करके उन्हें अपना लेते हैं, उनके प्रत्येक कार्य की जिम्मेदारी भी वही उठाते हैं। भगवान अपने भक्तों के आगे-पीछे घूमते हैं—

"मैं तो हूँ भक्त का दास भगत मेरे मुकुटमणि"

इसी स्थिति का वर्णन करते हुए सन्त कबीरदास ने कहा—

कबिरा मन निर्मल भयो जैसे गंगानीर।
पीछे-पीछे हरि फिरत कहत कबीर कबीर॥

जगदात्मा भगवान श्रीकृष्णचन्द्र जी ने स्वयं अपने मुखारविन्द से आश्वासन दिया है—

**अनन्याश्चिन्तयन्तो मां,**
**ये जनाः पर्युपासते।**
**तेषां नित्याभियुक्तानां,**
**योगक्षेमं वहाम्यहम्॥**

अर्थात् जो लोग अनन्य भाव से मेरा चिंतन करते हुए उपासना करते हैं, उनका योगक्षेम मैं वहन करता हूँ। अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति योग व प्राप्त वस्तु की सुरक्षा क्षेम कहलाती है। भगवान प्रत्येक अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति कराते हैं व प्राप्त वस्तु की सुरक्षा करते हैं।

इस प्रकार भक्त के ऐहलौकिक सभी कार्यों का बीड़ा उठाते हुए भगवान श्रीकृष्ण ने भक्त को परलोक में शुभगति दिलाने का भी जिम्मा लिया है। उनका कथन है, जो शरणागत भक्त अनन्य भाव से मेरी उपासना करते हैं, मैं उनका संसार-सागर से उद्धार करता हूँ।

**ये तु सर्वाणि कर्माणि,**
**मयि संन्यस्य मत्पराः।**
**अनन्येनैव योगेन मां,**
**ध्यायन्त उपासते॥**
**तेषामहं समुद्धर्ता,**
**मृत्युसंसार सागरात्।**

—गीता १२/६-७

पुनर्जन्म से वही भक्त छूट पाते हैं, जो पूर्णतः ईश्वराश्रित रहते हैं। मरणोपरान्त भक्त भगवान में ही मिल जाते हैं। ईश्वर की माया ने चराचर जगत् को अपने वश में कर रखा है व उससे अभिभूत सम्पूर्ण जगत् जरा-मरण के चक्रव्यूह में फँसा घूमता ही रहता है, परन्तु यह माया भगवान को छू भी नहीं पाती—

**दैवी ह्येषा गुणमयी,**
**मम माया दुरत्यया।**
**मामेव ये प्रपद्यन्ते,**
**मायामेतां तरन्ति ते॥**

—गीता ७/१४

भगवान तो पारसमणि सदृश हैं। उनका

स्मरण मात्र ही नीच से नीच तथा दुष्ट से दुष्ट पापी को भी परम पावन बना देता है। उसका दरबार पापी, पुण्यात्मा सभी के लिए खुला है। जो चाहे पुकारे, व ईश-कृपा प्राप्त करले। नवें अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—

**अपि चेत्सुदुराचारो,**
**भजते मामनन्यभाक्।**
**साधुरेव स मन्तव्यः,**
**सम्यग्व्यवसितो हि सः॥**
**क्षिप्रं भवति धर्मात्मा,**
**शश्वच्छान्तिं निगच्छति।**
**कौन्तेय प्रतिजानीहि,**
**न मे भक्तः प्रणश्यति॥**
**मां हि पार्थ ! व्यपाश्रित्य,**
**येऽपि स्युः पापयोनयः।**
**स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्ते-**
**ऽपि यान्ति परां गतिम्॥**

—गीता ९/३०-३१-३२

पातंजल योग-सूत्र में ईश्वर प्रणिधान के अनेक फल बताये गये है। ईश्वर प्रणिधान द्वारा आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होती है, ईश्वर प्रसन्न होते हैं तथा समाधि प्राप्त होती है। समाधि का सुगम उपाय बताते हुए भगवान पतंजलिदेवजी ने कहा—"ईश्वरप्रणिधानाद्वा" तथा इस सूत्र पर व्यास-भाष्य है—"प्रणिधानाद् भक्तिविशेषादावर्जितः, ईश्वरस्तमनुगृह्णात्यभिध्यान मात्रेण। तदभिध्यानादपि योगिन आसन्नतमः समाधिलाभः समाधिफलं च भवतीति।" अर्थात् ईश्वर को सभी कर्म अर्पित करने के कारण ईश्वर योगी की विशेष भक्ति पर प्रसन्न हो जाता है तथा उनके अनुग्रह के फलस्वरूप शीघ्र समाधि प्राप्त होती है। इस प्रकार सम्प्रज्ञात समाधि का साधक विलक्षण शक्ति-सम्पन्न हो जाता है। वह जो कुछ भी जानना चाहे, उसे यथार्थ रूपसे जान सकता है। वह दूसरे देशों की घटनायें, भूत भविष्य तथा देतान्तर की सभी बातें यथार्थ रूप से ज्ञात कर सकता है। भगवान पतंजलि देव जी का कथन है—

**समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्।**

(२/४५ योग-सूत्र)

इस पर व्यास मुनि का भाष्य है—

**ईश्वरार्पितसर्वभावस्य समाधिसिद्धिर्यया सर्वमीप्सितमवितथं जानाति, देशान्तरे देहान्तरे कालान्तरे च। ततोऽस्य प्रज्ञा यथाभूतं प्रजानातीति।**

ईश्वर प्रणिधान-निष्ठ योगी के क्लिष्ट कर्म स्वतः क्षीण होने लगते है। फलस्वरूप योगमार्ग के सभी विघ्न नष्ट हो जाते हैं। अभ्यास एवं वैराग्य से निर्मल प्रज्ञा-सम्पन्न साधक को कालान्तर में निज स्वरूप का

साक्षात्कार भी होता है। योग-सूत्रकार भगवान पतञ्जलि ने कहा है—

**ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च।**

इस सूत्र पर व्यास भाष्य इस प्रकार है—

**ये तावदन्तराया व्याधिप्रभृतयस्ते तावदीश्वरप्रणिधानान्न भवन्ति। स्वरूपदर्शनमप्यस्य भवति।**

इस प्रकार शास्त्र वचनानुसार योगियों का सहज समाधि प्राप्त करने के लिए ईश्वर प्रणिधान की साधना अवश्य करनी चाहिए। वस्तुतः सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उसी परम परमेश्वर की रचना है। चांद, सितारे, धरती आदि सब कुछ उसी के संकेत पर चलते हैं। हम जो कुछ भी करते हैं, ईश्वर की इच्छा के अनुसार ही करते हैं। परन्तु हम कुछ नहीं जानते कि हम क्यों ऐसा करते हैं। उमर खय्याम ने एक रुबाई में कहा है—गेंद को फेंक कर खेलने वाला जानता है कि उसने गेंद कहां फेंकी है, परन्तु गेंद को नहीं पता कि वह कहां जा रही है। इसी प्रकार संसार में हम सब ईश्वर-निर्दिष्ट कार्य ही करते हैं, परन्तु हमें कुछ पता नहीं है। जब वही सर्वशक्तिमान एक मात्र परम सत्ता है तो अभय प्रदान करने वाले उस परम पिता परमात्मा की गोद में क्यों न पहुँचा जाये, जहां जाकर परम-शान्ति मिलती है। क्यों न उस ईश्वर पर ही भरोसा रखा जाये। उसी परमेश्वर की शरण में जाना चाहिए, जो सभी दुःखों व पापों से छुड़ा सकता है। भगवान ने गीता में स्वयं कहा है—

**सर्वधर्मान् परित्यज्य**
**मामेकं शरणं व्रज।**
**अहं त्वां सर्वपापेभ्यो**
**मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥**

अतः सर्वशक्तिमान ईश्वर से प्रतिदिन प्रार्थना करनी चाहिए कि वह हमें शक्ति प्रदान करे, जिससे हमारी रुचि ईश्वर प्रणिधान की ओर बढ़े तथा हम मानव जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर सकें। ईश्वर-प्रणिधान में सफलता प्राप्त करने के लिये शारीरिक, वाचिक व मानसिक तप तथा ॐ अथवा गुरु मन्त्र का अधिक से अधिक यथाशक्ति जाप करना चाहिए। ईश्वर नाम-संकीर्तन ईश्वर-कथा श्रवण आदि शुभ कार्यों द्वारा उत्तरोत्तर बढ़ते हुए पुण्य के फलस्वरूप भी अधिकाधिक जाप होगा व फलस्वरूप ईश्वर प्रणिधान सिद्ध होगा। श्री सद्गुरुदेव भगवान हम पर ऐसी ममतामयी कृपा बरसावें कि जिससे हमें आध्यात्मिक पूर्णता प्राप्त हो।

卐

# पत्रम्-पुष्पम्-फलम्-तोयम्

## ( बाल्मीकि रामायण की सूक्तियां )

अलंकारो हि नारीणं क्षमा तु पुरुषस्य वा ।

क्षमा ही स्त्री तथा पुरुषों का भूषण है ।

× × ×

क्षमा यशः क्षमा धर्मः क्षमायाँ तिष्ठितं जगत् ।

क्षमा ही यश है, क्षमा ही धर्म है, क्षमा से ही चराचर जगत् है ।

× × ×

ब्रह्मन ! ब्रह्मबलं दिव्यं क्षात्राच्च बलवत्तरम् ।

हे ब्रह्मन ! क्षात्रबल से, ब्रह्मबल अधिक दिव्य एवं बलवान होता है ।

× × ×

सत्यमेक पदं ब्रह्म सत्ये धर्मः प्रतिष्ठितः ।

सत्य ही एकमात्र ब्रह्म है । सत्यमें ही धर्म प्रतिष्ठित है ।

× × ×

न ह्यतो धर्म चरणं, किञ्चिदस्ति महत्तरम् ।
यथा पितरि शुश्रूषा, तस्य वा वचन क्रिया ।।

पिता की सेवा और उनके वचनों का पालन करना, इससे बढ़कर पुत्र के लिए और कोई धर्माचरण नहीं है ।

× × ×

विक्लवो वीर्यहीनो यः स देवमनुवर्तते ।
वीराः सम्भावितात्मानो न दैवं पर्युपपासते ।।

जो कातर और निर्बल हैं वे ही दैव का आश्रय लेते हैं। वीर और आत्म-निष्ठ पुरुष दैव की ओर कभी नहीं देखते।

× × × ×

दैवं पुरुषकारेण यः समर्थः प्रबाधितुम् ।
न दैवेन विपन्नार्थः पुरुषः सोऽवसीसदति ॥

जो अपने पुरुषार्थ से दैव को प्रबाधित ( मजबूर ) कर देने में समर्थ हैं, वे मनुष्य दैवी आपत्तियों से कभी अवसन्न ( खिन्न, दुःखितः ) नहीं होते।

× × × ×

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ता समुच्छ्रयाः ।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम् ॥

जितने भी संचय ( संग्रह ) हैं, वे सब एक दिन क्षय हो जाते हैं, उत्थान पतन में बदल जाते हैं। इसी प्रकार संयोग का अन्त वियोग में और जीवन का अन्त मरण में होता है।

× × × ×

सहैव मृत्युर्व्रजति, सह मृत्युर्निषीदति ।

मृत्यु मनुष्य के साथ ही चलती है, साथ ही बैठती है। अर्थात् वह हर समय साथ ही लगी रहती है। पता नहीं कब वह हमें दबोच ले।

× × × ×

कुलीनमकुलीनं वा वीरं पुरुष मानिनम् ।
चारित्रमेव व्याख्याति शुचि वा यदि वाऽशुचिम् ॥

कुलीन तथा अकुलीन, वीर तथा डरपोक, पवित्र तथा अपवित्र पुरुष अपने आचरण से ही जाना जाता है।

× × × ×

सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाश्रितः ।
सत्य भूतानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम् ॥

संसार में सत्य ही ईश्वर है। सत्य में ही सदा धर्म रहता है। सत्य ही सब अच्छाइयों की जड़ है। सत्य से बढ़कर और कुछ नहीं है।

# ❋ हमें दे डालो यह वरदान ! ❋

पं० श्री रामनारायण जी त्रिपाठी 'मित्र'

---

शिवाशिव ! तुम हो दया निधान ।
हमें दे डालो यह वरदान ॥

रहें हम सब शाश्वत स्वाधीन ।
परस्पर मत्सर-बैर-विहीन ॥
करें इस विधि उद्योग नवीन ।
न रह जायें हम जग में दीन ॥

हमारा दिन दिन हो उत्थान ।
हमें दे डालो यह वरदान ॥

भरें हम सबमें विमल विचार ।
बनें हम शुभ गुण-गण भण्डार ॥
शान्ति समताका रख व्यवहार ।
करें हम अविरत पर-उपकार ॥

सभ्यता का हो हममें स्थान ।
हमें दे डालो यह वरदान ॥

क्षमा, करुणा, श्रद्धा, विश्वास ।
निरन्तर हममें करें निवास ॥
करें हम हिल-मिल यही प्रयास ।
समुज्ज्वल हो अपना इतिहास ॥

प्रसारित हों फिर वेद-विधान ।
हमें दे डालो यह वरदान ॥

रुचे हमको हरि-कथा-प्रसंग ।
मिले संतत सन्तों का संग ॥
धर्म की हममें बढ़े उमंग ।
न शुभ कर्मों का क्रम हो भंग ॥

करें हम सबका सम सम्मान ।
हमें दे डालो यह वरदान ॥

भक्ति का हममें बहे प्रवाह ।
सत्त्व गुण हममें भरे अथाह ॥
बढ़ें हममें साहस, उत्साह ।
मिटे सब भव-तापों का दाह ॥

करें हम कमलापति का ध्यान ।
हमें दे डालो यह वरदान ॥

प्रणव-जप-तप-व्रत कर अविराम ।
करें हम प्रभु-पूजन निष्काम ॥
बसा हृदयों में सीताराम ।
दृगों में राधायुत घनश्याम ॥

सुनें मंजुल मुरली की तान ।
हमें दे डालो यह वरदान ॥

उपनिषद उपवन सुमन सुवास ।
उड़े पाकर अध्यात्म विकास ॥
हमारा सबका हर निश्वास ।
करे वह सुरभित हर हिय-ह्लास ॥

मोह माया का हो अवसान ।
हमें दे डालो यह वरदान ॥

सकल जीवों का हित हिय धार ।
लक्ष्य कर सब जग का उद्धार ॥
करें हम बनकर विबुध उदार ।
ब्रह्म-विद्या का प्रचुर प्रचार ॥

भरें हिय-हिय में ब्रह्म-ज्ञान ।
हमें दे डालो यह वरदान ॥

—✲✲✲—

# आस्तिकता का अर्थ

स्वामी श्री सत्यप्रकाश जी

**आ**स्तिकता का अर्थ, ईश्वर की सत्ता में विश्वास रखना, ईश्वर के ज्ञान में विश्वास रखना और ईश्वर की व्यवस्था में विश्वास रखना है।

हम न अपनी मर्जी से संसार में आये और न हम अपने विषय में ही ज्यादा जानते हैं। 'अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्'—वह हमारा प्रभु ही हमारे सब कर्मों को जानता है। कर्म तो हम करते हैं, फलों की व्यवस्था वह करता है। मां को तो पता नहीं कि उसकी कोख में कौन बालक जन्म ले रहा है, वह इतने से ही प्रसन्न है कि वह माता बन रही है। ईश्वर की व्यवस्था को जो नहीं मानता है, वह दुःख पाता है। किसी की हमारे घर में मृत्यु हो जाये, तो हम ईश्वर को गाली देने लगते हैं। जब तक धन-दौलत मिलती रही, हम प्रसन्न हैं—पर सब कुछ चला जाने पर भी जो ईश्वर को प्यार करे और उसकी दया में विश्वास करे, तब समझना कि वह सच्चा आस्तिक है। मेरे एक मित्र डिस्ट्रिक्ट जज थे—उनका होनहार बेटा मर गया—वे विचलित हो उठे, वे धार्मिक प्रकृति के थे। साधु-सन्तों को खिलाते-पिलाते और पूजा-पाठ करते थे। बेटे के मरने पर उलाहना देने लगे कि 'ईश्वर ने उनकी भावनाओं का आदर नहीं किया—नास्तिकों के बेटे मरें तो ठीक, पर आस्तिकों के घरों में भी अगर होनहार युवकों की मृत्यु हो जाये, तो यह कौन-सा न्याय है!' हम ईश्वर की व्यवस्था को नहीं समझते और तब हम पागल हो उठते हैं।

इस शरीर में मैं हूं और मेरा ईश्वर है। मैं थोड़ा-सा करता हूं, वह बहुत-सा करता है। मैं तो केवल ग्रास उठाकर मुंह में रख लेता हूं—रात का खाना मुंह में डाला और सो गया। पर जब मैं सो जाता हूं, मेरा प्यारा रसोइया, अर्थात् मेरा प्रभु मेरे शरीर की सारी व्यवस्था करता है—जो दाल-भात मैंने खाया, उससे हजारों चीजें शरीर में बनाता है और शरीर के विभिन्न अंगों में पहुंचाता है—कुछ आंख में, कुछ हड्डियों में, कुछ मांस में। उसकी व्यवस्था से ही हम चलने-फिरने लायक होते हैं। हम अपने प्रभु को भूल जाते हैं, वह हमें कभी नहीं भूलता। इसीलिए तो अथर्ववेद में कहा है—"अन्ति सन्तं न जहाति, अन्ति सन्तं न पश्यति।" एक तो वह है जो पास में रहता और हमें कभी नहीं छोड़ता और एक हम हैं कि उसके पास में हैं, पर उसकी ओर देखते भी नहीं। ईश्वर का कितना उपकार हमारे ऊपर है, उसकी इस व्यवस्था को हम भूल जाते हैं।

Regd. No. L. AG. 008



प्रेषक कार्यालय :—

# सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सराई ( एत्मादपुर ) आगरा ।

PRINTED MATTER
Book-Post

श्री ..............................................

..............................................

..............................................

..............................................

## मन का धर्म

मन की शक्ति बड़ी विलक्षण है । मन जिसका चिन्तन करता है, उसी जैसा बन जाता है । मन तदाकार बनकर ही किसी वस्तु का अनुभव कर सकता है । अतः मन जिसका ध्यान करने लगता है, उसको प्राप्त करता है । यदि वह वीरता का ध्यान करेगा तो वीर बनेगा और यदि कामुकता का ध्यान करेगा तो कामान्ध बनकर नष्ट हो जायगा । वह मन कल्प वृक्ष है । क्योंकि यह जो भी कल्पना करेगा वह फलीभूत होगी । मन की ऐसी विलक्षण शक्ति होने से इसका उपयोग बड़ी सावधानी से करना चाहिए । यदि अच्छा उपयोग किया जाय तो भला होगा अन्यथा नाश होने में देर नहीं लगेगी । मन की इस शक्ति और गुण को देखते हुए सदैव इसका सदुपयोग ही करना चाहिए ।

मन का स्वभाव ही मनन करने का है । ऐसा एक क्षण भी नहीं जाता कि जब मन किसी न किसी का मनन या विचार नहीं करता । यदि ऐसा है तब सर्वोत्तम तत्व का ही विचार क्यों न किया जाय । संसार में परमेश्वर ही सर्वश्रेष्ठ तत्व है तब क्यों न इस सर्वश्रेष्ठ तत्व का ही मनन सदैव मन के द्वारा किया जाय ।

मुद्रक—देवीप्रसाद शर्मा 'दिव्य' कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बल्लई कलां, ताजगंज, आगरा-१ फोन ६३१६८